श्रीधन्वन्तरयेनमः



वैद्य सम्मेलन-पत्रिका

निखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलनकी त्रैमासिक मुख पत्रिका ।

प्रथम वर्ष { माघ—चैत्र १९७१ वै० } द्वितीय संख्या

विषय सूची ।

किशोरीदत्त शास्त्री
सूर्यप्रसाद वाजपेयी } सम्पादक
जगन्नाथप्रसाद शुक्ल



शंकर दाजी शास्त्री पदे

बार्षिक मूल्य २) —सभासदोंको मुफ्त.

वैद्य

सम्मेलन-पत्रिका

कलकत्तेके षष्ठ वैद्य सम्मेलनके सभापति।



आयुर्वेद मार्तण्ड पं० लक्ष्मीराम स्वामी वैद्यरत्न।

॥ श्रीधन्वन्तरयेनमः ॥

वैद्य-सम्मेलन-पत्रिका

निखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमिति आयुर्वेद-महामण्डल और आयुर्वेदविद्यापीठकी ओरसे प्रकाशित ।

द्वितीय वर्ष { माघ—चैत्र सं० १९७१ वै० } द्वितीय संख्या

आयुर्वेदका अनादर ।

किसी भी देशका राजा और उसकी सरकार देशभरकी कार्यकारिणी संस्था है, देशके हितके कामोंको कार्य रूपमें परिणत करनेवाली महाशक्ति है । प्रजाके किये हुए भी बहुतसे काम सिद्ध होते हैं और कीर्ति प्राप्त करते हैं; परन्तु यदि देशके जीवनमरणसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंकी सिद्धिपर प्रजाके साथ ही राजशक्ति भी विद्यमान हो तो उसकी सिद्धि बहुत शीघ्र होती है । देशके धनियों और शक्तिशालियोंका झुकाव उसमें अनायास होता है और काम करनेवालोंमें विलक्षण कार्यशक्ति सनसनाती रहती है, लोगोंमें उत्साहका उत्स फूटता रहता है, बलकी बिजली दौड़ती रहती है। परन्तु जिस कामको प्रजा तो हृदयसे चाहती है; किन्तु राजशक्ति उसकी अवहेलना करती है, उसकी उन्नति ज़रा विलम्बसे होती है । हमारी ब्रिटिशसरकार पुराने शास्त्रोंकी, पुरानी कीर्तियोंकी रक्षा करनेमें प्रसिद्ध है और इसीलिये प्राचीन पार्थिवकीर्तिचिन्होंकी रक्षाके लिये उसके यहां एक अलग विभाग स्थापित है। प्राचीनशास्त्रोंकी रक्षाके लिये भी वह कई वर्षोंसे सचेष्ट है और उसके लिये वह देशके कई भागोंमें उनकी पढ़ाईके लिये विद्यालय खोल चुकी अथवा खोल रही है । परन्तु बड़े ही दुःख, सन्ताप और खेदके साथ कहना पड़ता है कि जो आयुर्वेद अनादि कालसे सुवि-

शाल भारतभूमिकी पूर्ण रूपसे रक्षा करता आरहा है, जिसके कुछ अंशमात्रके विकृत स्वरूप आज भी सम्पूर्ण संसारमें विविधपैथियों- के रूपमें प्रचलित रह संसारी जीवोंकी जीवनरक्षा और आरोग्य- रक्षा कर रहे हैं, उस सम्पूर्ण संसारके वैद्यकोंके पिता आयुर्वेदका भारत सरकारके यहां—हमारी ब्रिटिश सरकारके यहां—कुछ भी आदर नहीं है, उसकी रक्षाकी ओर कुछ भी ध्यान नही है, उसकी शिक्षा दीक्षाके प्रचारका कुछ भी विचार नहीं है; यही नहीं बल्कि कहते हुए हृदय विदीर्ण होता है कि सरकार दरबारमें जानसे हो या बेजानसे उसका कभी कभी अनादर होता है, सरकार दरबारमें कुछ लोगोंके द्वारा, यहां तक कि कुछ देशी कुलाङ्गारोंके द्वारा उसका अपमान होता है।

गत वर्ष बम्बईकी कायदा बनानेवाली कौंसिलमें (लेजिस- रिव कौंसिलमें) यह प्रश्न उठा था कि सरकार देशी वैद्यकको स्वीकार कर उसकी शिक्षामें कुछ द्रव्य लगाया करे; परन्तु वह यों ही बातोंमें टाल दिया गया। इस वर्ष मद्रासकी कौंसिलमें प्रश्न नहीं बल्कि प्रस्तावके रूपमें यह बात छेड़ी गयी थी कि "देशी वैद्यकको सरकार उत्तेजन देवे और उसमें जिन सुधारोंकी आवश्य- कता हो उन्हें पूर्ण करे।" इस प्रस्तावको उपस्थित करनेवाले देशके सपूत माननीय मिस्टर कृष्णराव थे। आश्चर्यकी बात है कि ऐसा उपयोगी प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ और सरकारकी ओरसे इसके लिये सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया गया। मद्रासकी सरकारी कौंसिलमें इस प्रस्तावका अधिकांश सभ्यों द्वारा समर्थन भले ही न हुआ हो; परन्तु सरकारको स्मरण रखना चाहिये कि देशके करोड़ों हृदय अन्तःकरणके गहरे तलसे इसका समर्थन करते हैं और इस प्रस्तावके अस्वीकृत होनेसे करोड़ों हृदय मर्माहत और दुःखित हुए हैं।

मद्रास सरकारकी ओरसे इस प्रस्तावको अस्वीकार करनेके लिये जो कारण बताया गया है, वह न तो सन्तोषजनक है और न पुष्टप्रमाणोंसे पूर्ण है। कहा गया है "यह बात नहीं कि देशी वैद्यक- के विषयमें सरकारकी सहानुभूति न हो; परन्तु इस कार्यमें खर्च करनेके लिये सरकारके पास पैसा नहीं है।" हम नहीं समझते कि इस कोरी सहानुभूतिका भी कुछ अर्थ है अथवा कुछ मूल्य है।

जिन गरीब देहाती किसानोंकी मालगुजारी और टेक्ससे सरकारी खजाना भरता है, उन्हींकी आरोग्यरक्षा, उन्हींकी जीवनरक्षा जिस देशी वैद्यक और देशी वैद्योंके द्वारा होती है, उस वैद्यकके उत्तेजन और सुधारके लिये सरकारके पास पैसा नहीं है, यह क्या कम दुःखकी बात है ? आगे चलकर सरकारकी ओरसे जो कहा गया है उससे उसकी कोरी सहानुभूतिका भी कुछ मूल्य नहीं रह जाता। कहा गया है "यदि कहा जाय कि मेडिकल डिपार्टमेंटके लिये सरकार जो थोड़ी बहुत रकम खर्च करती है, उसमेंसे कुछ रकम देशी वैद्यकके लिये खर्च करे तो यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि उस रकमका विनियोग उसी पद्धतिसे होना स्वाभाविक है, जो पद्धति सरकारको स्वीकृत है।" इस उत्तरसे क्या सिद्ध होता है ? यही नकि सरकारको एलोपैथी पद्धति स्वीकृत है और देशी वैद्यककी पद्धति अस्वीकृत है; क्योंकि यदि यह भी स्वीकृत होती तो इसके लिये भी उक्त विभागकी रकमसे कुछ खर्च करना स्वाभाविक होता। इससे यदि किसीको यह समझ हो जाय कि देशी वैद्यकका सत्यानाश हो जाय तो भी सरकार कोरी सहानुभूति दिखानेके सिवाय अधिक कुछ करना अपना कर्तव्य नहीं समझती तो उसका किन शब्दोंमें समाधान किया जा सकता है ? हम तो यही समझते हैं कि सरकार वैद्यक और आरोग्य विभागमें जो खर्च करती है, उसकी कमसे कम आधी रकम उसे देशी वैद्यककी उन्नति और उत्तेजनमें लगानी चाहिये; क्योंकि जहां एलोपैथी पद्धतिसे देशके कुछ शहरवासी ही लाभ उठा सकते हैं, तहां देशी वैद्यकके उत्तेजनसे केवल शहर ही नहीं देहात निवासी करोड़ों भारतवासी भी लाभ उठा सकेंगे। यही नहीं देशी वैद्यककी पद्धतिसे थोड़े खर्चमें उतनी ही नहीं बल्कि उससे अधिक गुणकारी औषधियोंका उपयोग किया जा सकेगा। यह बात कथनकी नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अनुभवकी है। पूनेकी म्युनिसिपलिटी कुछ रुपये खर्चकर एक देशी दवाइयोंका अस्पताल चला रही है, उसके द्वारा हर महीने हजारों मनुष्य लाभ उठा रहे हैं। प्रतापगढ़की म्युनिसिपलिटी एक वैद्यको केवल १०) महीने देती है; परन्तु उससे भी हर महीने हज़ारों मनुष्य लाभ उठाते हैं। प्रयागके माघमेलेमें आयुर्वेद-

महामण्डल देशी धर्मार्थ औषधालय खोला करता है । उसमें सौ रुपयेके भीतर ही खर्च करनेसे हज़ारों यात्रियोंको लाभ पहुँचाया जाता है। इस तरहका अनुभव अजमेर आदि और अनेक नगरोंमें देखनेको मिलता है। खुद मद्रासमें ही कन्यकापरमेश्वरी धर्मार्थ औषधालयमें आकर इस विषयका भ्रम निवारण किया जा सकता है। सरकारको समझना चाहिये कि देशी वैद्यककी ओर इतना दुर्लक्ष्य करने पर भी आज बहुजनसमाज उसीसे लाभ उठाता है और शहरों और नगरोंके करोड़ों मनुष्य देशी वैद्यकसे ही रोगमुक्त हुआ करते हैं । यही नहीं बल्कि जिन रोगियोंको अच्छे नामी डाक्टर भी असाध्य कह कर छोड़ देते हैं उनमेंसे बहुतेरोंको देशी वैद्यकसे पुनर्जीवन मिलता है। इस विषयके एक नहीं हज़ारों उदाहरण संग्रह कर बताये जा सकते हैं।

सरकारकी ओरसे मिस्टर शिवस्वामी आयर द्वारा यह भी कहा गया है कि "देशी वैद्यकशास्त्रकी वृद्धि रुकी हुई है, देशी वैद्य अपनी औषधियां गुप्त रखते हैं और इस बातके समझनेका साधन नहीं है कि अच्छे वैद्य कौन हैं।" सारांश यह कि इन कारणोंसे देशी वैद्यक सहायताके लिये अपात्र है। परन्तु हम इस आक्षेप को भी अस्वीकार करते हैं। यह ठीक है कि बहुत दिनोंसे देशी वैद्यकका क्रमविकाश बन्द है; परन्तु इधर वैद्योंमें जागृति हो रही है और वे उन विषयों-की पूर्तिमें सचेष्ट हो रहे हैं कि जो बातें हमारे यहां संक्षिप्त रूपमें हैं और आज विस्तृत रूपमें मालूम हो रही हैं अथवा मालूम की जा सकती हैं उनकी पूर्ति की जाय। देशी वैद्यककी अमृत समान औष-धियोंका भंडार पुस्तकोंमें लिखा है उस पर छिपानेका दोष चल नहीं सकता और इसके सिवाय वैद्यसम्मेलनमें जानेवालोंको यह अच्छी तरह मालूम है कि किस प्रकार बड़े बड़े वैद्य अपने अनुभूत प्रयोग खुले दिलसे वहां कहते हैं। इसके सिवाय वैद्यसम्मेलनने परीक्षाका क्रम आरम्भ किया है और उपयुक्त वैद्योंको पदवियोंसे विभू-षित करता रहता है, उसके सहारे सरकार चाहे तो योग्य वैद्य छांट सकती है अथवा यदि मिस्टर शिवस्वामी आयरके अक्षेपों को हम स्वीकार भी करें तौभी कहना पड़ेगा कि जब देशी वैद्यककी वृद्धि रुकी है तब तो और भी अधिक आवश्यकता है कि सरकार उच्च पद्धतिके अनुसार देशी वैद्यककी शिक्षा देकर उसको उत्तेजन दे।

देशी वैद्यककी वृद्धिके लिये आवश्यक आयुर्वेदविद्यालय, वनस्पति उद्यान, भेषज सग्रहालय, औषधालय, आतुरालय आदि वैद्योंको न देकर उन्हें अयोग्य और सहायताके लिये अपात्र ठहराना वैसाही है जैसे किसी वीर योद्धाके हाथमें तलवार बन्दूक न देकर कहा जाय कि यह लड़ नहीं सकता इस लिये इसका वेतन बन्द कर दिया जाय ! अच्छे वैद्योंकी जांचके लिये अन्य साधन स्वीकार न किये जायँ तौभी सरकारने जिन कविराज योगीन्द्रनाथसेन, कविराज कालिदास विद्याभूषण, पं० डी० गोपालाचार्लू, पण्डित श्रागड्डी गोपालाचार्लू प्रभृति को "वैद्यरत्न" की उपाधि देकर उनकी योग्यता-स्वीकार की है और आगे और भी बहुतोंकी योग्यता स्वीकार करेगी उन्हींके हाथके नीचे देशी वैद्यककी शिक्षाके लिये आदर्श विद्यालय और अतुरालय खोल कर देशी वैद्यकको उत्तेजन देनेका कार्य आरम्भ करे । यह युक्ति किसी कामकी नहीं कि जिसमें सुधारकी आवश्य-कता हो और जिसकी उन्नति रुकी हो उसको उत्तेजन न दे नष्ट हो जाने देना चाहिये ।

हमें दुःख यह है कि इस प्रस्तावका विरोध सरकारकी ओरसे एक देशी और हिन्दू आनरेबलके मुखसे हुआ है । वे शिखण्डी मिस्टर शिवस्वामी आयर हैं । उनके श्रीमुखसे इन शब्दोंको सुनकर हमारा हृदय विदार्ण हुआ है, छिन्न भिन्न हुआ है कि "देशीचिकित्सा शास्त्रमें सुधारकी आवश्यकता है, अतएव वह क्रम दोषयुक्त है । ऐसी अवस्थामें उचित नहीं कि सरकार अपने परिमित कोषसे व्यर्थमें धनखर्च करे; विशेषकर दोषयुक्त शास्त्रपर, जबकि पश्चिमी ढङ्गके चिकित्सा क्रमके लिये उसे अभी बहुत कुछ करना है ।" हृदय स्वीकार नही करता कि जिस वैद्यककी उपयोगिताका अनुभव शिवस्वामी ही नहीं, उनके बाप दादों तकने किया है उसकी उपयो-गिता और श्रेष्ठतासे वे अनजान हों; फिरभी उनके से शिक्षित मनुष्यके मुँहसे क्यों ऐसे शब्द निकल रहे हैं वेही जानें । मिस्टर शिवस्वामीको यह समझाना नहीं पड़ेगा कि प्रत्येक देशकी जड़ी बूटियां उस जलवायुसे पोषित होती हैं, जिस जलवायुमें वहांके निवासी परिपालित हुए हैं, अतएव उनके लिये वही औषधि उपयोगी होगी जो उनके देशको उत्पन्न है । भारत वासियोंका त्राण उन्हींके

चिकित्साशास्त्रसे होना सम्भव है; उधारी चिकित्साशास्त्र उनके लिये सामयिक उपयोगी हो जाय; परन्तु सर्वदा और प्रकृतगत नहीं हो सकता। इस लिये हमारा आयुर्वेद कैसाही हो उसकी उन्नति करनी चाहिये और उसे देशवासियोंको आयुरारोग्य प्रदान करने-योग्य बनाना चाहिये। उसकी उन्नतिसे केवल भारतका ही नहीं बल्कि समस्त संसारका उपकार होगा।

अवश्यही यह प्रस्ताव मद्रासकी कौंसिलमें अस्वीकृत हुआ है परन्तु इसीसे हमारे आनरेबल मेम्बरोंका कर्तव्य समाप्त नहीं होता। निराश होनेकी बात नहीं, निरुत्साहित होनेकी बात नहीं है. विविध प्रान्तोंकी कौंसिलोंमें और यहां तक कि भारत सरकारकी कौंसिलमें भी बारम्बार इस प्रश्नकी चर्चा होनी चाहिये। बारम्बार रगड़ होनेसे सरकार समझ सकेगी कि इस ध्वनिकी प्रतिध्वनि करोड़ों भारतवासियोंके हृदयसे हो रही है, तभी तो बारम्बार यह प्रश्न सामने आता है। अतएव सरकारको एक दिन कृपा पूर्वक सर्वसाधारणके हितके लिये अपना हठ छोड़ना पड़ेगा और इस प्राचीन और उपकारी शास्त्रकी उन्नतिमें उसे हाथ लगाना पड़ेगा। विविध प्रान्तों और नगरोंमें फैले हुए हमारे वैद्य समुदाय और आयुर्वेद प्रेमियोंका यह कर्तव्य है कि वे अपने परिचित माननीय मेम्बरोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते रहें और समय समय पर विविध प्रकारसे इस प्रश्नकी सहायताके लिये उनसे अनुरोध करते रहैं। यही नहीं, वैद्योंके लिये विशेष रूपसे सावधान होकर चलनेका समय आया है। अभी जब तक राजशक्ति तुम्हारी उन्नतिमें सहायक नहीं है तब तक तुम्हें स्वयं अपने बल पर खड़े होकर अपनी उन्नति करनी चाहिये। देरी अवश्य लगेगी, लगने दो किसी राष्ट्रका किसी समुदायका उत्थान एक दिनमें नहीं होता। पहले अपनी योग्यता अखण्ड रूपसे प्रतिपादित करो। कभी सम्भव नहीं कि राजशक्ति तुमसे अलग रह सके। वह एक न एक दिन तुम्हारे साथ होगी और तुम्हारी उन्नति जोर शोरसे करावेगी। बम्बई प्रान्तके माननीय गरुड़ और मद्रास प्रान्तके माननीय कृष्ण-राव धन्यवादके पात्र हैं। उन्होंने अपने इस प्रस्ताव-चर्चासे वैद्योंको यह उपदेश दिया है कि तुम्हारे आयुर्वेदकी उपयोगिता हम लोग मान रहे हैं; परन्तु देखो तुम्हारी अयोग्यतासे और अपने शास्त्रकी

क्रमविकाश उन्नति न करते रहनेकी अकर्मण्यतासे, यही नहीं तुम्हारे शास्त्रज्ञान छिपानेकी निन्द्य, घृणित और दुष्ट प्रवृत्तिसे इस शास्त्रकी उन्नति होनेका समय नहीं आने पाता और तुम जिस अधोगतिके प्रवाहमें पड़ कर बहते जा रहे हो उसीमें तुम्हारा अन्त हो जाना तक बहुतोंको अभीष्ट हो रहा है! वह क्यों, इसी लिये कि तुम आपही अपने अस्तित्वकी आत्महत्या कर रहे हो! चेतो, उठो, अपनी उन्नतिके लिये कमर कसो। वैद्य सम्मेलनको तमाशा मत समझो, यही तुम्हारी संघशक्तिको संगठित करेगा, लोगोंको तुम्हारी ओर खींचेगा, तुम्हारी शक्तिको बलवान बनावेगा, तुम्हारे अभीष्टोंकी सिद्धिके लिये साधन इकट्ठा करेगा तुम्हारे लोकोपकारी स्वरूपको संसारको दिखावेगा। एक वैद्यसम्मेलनको पुष्ट बलिष्ट करनेसे तुम पुष्ट बलिष्ट बनोगे, इसको शक्ति सम्पन्न करनेसे तुम शक्ति सम्पन्न होगे, इसे उन्नत करनेसे तुम उन्नत होगे, इसे दोष रहित करनेसे तुम्हारे दोषों और कलंकोंका क्षालन होगा; वैद्यसम्मेलन ही तुम्हारा प्रकृत और यथार्थ विराट स्वरूप है। वह तुम्हारा और तुम उसके हो। स्मरण रखो अभीजो तुम्हारा और तुम्हरे आयुर्वेदका अनादर हो रहा है, वह अनादर नहीं तुम्हारे लिये प्रबल ठोकर है। ऐसी ही ठोकरोंसे तुम चेतोगे और उन्नति करनेमें सन्नद्ध होगे। यही अनादर तुम्हारे लिये आदरका कारण होगा। एवमस्तु।

सम्मेलनसमाचार।

आगामी षष्ठ वैद्यसम्मेलन कलकत्तेमें २ जनवरीसे ५ जनवरी शनिवार माघ कृष्ण १ (महाराष्ट्रोंके हिसाबसे पौष कृष्ण १) से मङ्गलवार माघ बदी ४ तक होगा। सम्मेलन अपरचितपुर रोड जोड़ासांकूमें (बीडन स्क्वायरके दक्षिण) नम्बर ८८ श्रीमान् हरेन्द्रकृष्ण शील महोदयके सुविशाल भवनमें होगा। प्रदर्शिनीके लिये उसीके सामने पश्चिम और पथरियाघट्टा नम्बर ६६ श्रीयुक्त ब्रजलाल राधाकृष्ण जी गद्दीवालाके विशाल भवनमें स्थान नियुक्त हुआ है। प्रतिनिधियोंके ठहरानेका प्रबन्ध हेरिसनरोडकी दो विशाल धर्मशालाओंमें प्रबन्ध किया गया है। प्रदर्शिनी २४ दिसम्बरसे खुल जायगी और १० जनवरी तक रहेगी। बड़े दिनका कंसेशन (रियायती टिकट) ३१ दिसम्बर तक मिलेगा। इसलिये रियायती टिकटमें जानेवाले ३१ दिसम्बर अथवा इससे पहले रवाना हो जायँ। तीसरे दर्जेका दोहरा दाम देनेसे ड्योढ़े दर्जेका आनेजानेका टिकट मिलेगा।

स्वागतकारिणी समितिकी ओरसे निमन्त्रणपत्र भेजे जा रहे हैं; परन्तु भूल अथवा भ्रमसे जिन्हें पत्र न मिल सकें, वे सज्जन यह न समझें कि हमारे पास तो पत्र ही नहीं आया। अखिल भारतवर्षके वैद्योंसे और आयुर्वेदसे प्रेम और सम्बन्ध रखनेवाले सज्जनोंसे निवेदन है कि वे यथासम्भव सम्मेलनमें अवश्य पधारें। आयुर्वेदमहामण्डल इस सार्वजनिक सूचना द्वारा सबको निमन्त्रण देता है। आयुर्वेदमहामण्डल और आयुर्वेदविद्यापीठके सभासदोंको हम इस पत्रिका द्वारा ही निमन्त्रण भेजते हैं। अवश्य स्वागतकारिणीकी ओरसे भी निमन्त्रण आवेगा ही। मण्डल पृथक अब पत्र न भेज कर निमन्त्रण रूपमें यह पत्रिका भेज रहा है और निवेदन करता है कि सब सज्जन वहां उपस्थित होकर सम्मेलनकी शोभा बढ़ावें।

कलकत्तेमें स्थान, भोजन, दियाबत्ती और बर्तन चौका करनेवाले कहार मजदूरोंका प्रबन्ध स्वागतकारिणीसमितिने अपने जिम्मे लिया है। अपनी शक्ति भर प्रतिनिधियोंकी सेवा करनेका वहांके आयुर्वेदप्रेमी स्वागतकारिणीके सभ्योंका आग्रह है। इसलिये स्थान-स्थानमें प्रतिनिधियोंका निर्वाचन आरम्भ हो जाना चाहिये। भारतका कोई नगर ऐसा न बचना चाहिये जहांसे दश पांच प्रतिनिधि न पहुँचे। जहां जहां वैद्यक सम्बन्धी सभाएं हैं वहांसे तो दलके दल प्रतिनिधि पहुँचने चाहिये। प्रतिनिधि लोग जाड़ेके कपड़े अपने साथ आवश्यकतानुसार लेते आवें। सम्मेलनके नियमानुसार प्रत्येक प्रतिनिधिको दो रुपये प्रतिनिधि फीस देनी पड़ेगी।

परीक्षाफल—आयुर्वेदविद्यापीठकी परीक्षामें इस वर्ष प्रयाग, दिल्ली, लाहौर, लखनऊ, अजमेर और पूनाके मिलाकर २८ परीक्षार्थी बैठे थे; इनमें से १३ उत्तीर्ण हुए हैं। आयुर्वेद विशारदमें १५ में से ६ पास हुए जिनमें ३ प्रथम श्रेणीमें ४ द्विती श्रेणीमें और २ तृतीय श्रेणीमें पास हुए हैं। क्रमसे नाम ये हैं। भगवानदीन मिश्र बहराइच, गंगाचरण भवानी सहाय हिसार, शिवदर्शन वाजपेयी फतेहगढ़, मनमोहन झा अजमेर, पुरुषोत्तम गणेश नानल पूना, धन्वन्तरि प्रसाद नूरपुर कांगड़ा, चन्दूलाल गुप्त हिसार, श्रीलाल शर्मा जेवरबुलन्दशहर और जयनारायण पाण्डेय लखनऊ। प्राकृत परीक्षामें १० प्रविष्ट हुए थे उनमें एक प्रथम श्रेणीमें, एक द्वितीय श्रेणीमें और दो तृतीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए हैं। उनके क्रमशः नाम ये हैं। फिरायाराम शर्मा सरगोधा, मूलचन्द शर्मा अजमेर, सागरदत्त रामलाल करोरा बुलन्दशहर और विश्वनाथ शर्मा जम्बू। परीक्षाफल साधारणतः अच्छा है।

नागसे बङ्ग (राँगा) बलवान् है ; क्योंकि जब हम रसायन-शालामें धातुओंका शोधन करते थे, तब हमने अपने नेत्रोंसे देखा था कि नागको तो "शोधनार्थाभ्राष्ट्री" में लोहेके कलछेमें रखते थे तो तुरन्त द्रुत हो जाता था और तेलमें डालते डालते घनी भावापन्न हो जाता था ; और बङ्ग (कलई) को जब उक्त भिट्टीमें रखते थे तब उसकी अपेक्षा बहुत देरीमें द्रुत होता था (पिघलता था)। और तेलमें डालते तब भी बहुत देरी तक लोहेकी कलछीसे चलाते रहते तब घनीभूत होता था। प्रत्यक्षमें भी रोगीको देते हैं तो जितना प्रभाव बङ्गका होता है उतना नागका नहीं होता। इसलिये नाग कमजोर है, बङ्ग बलवान् है। इसीसे नागके गुणको बङ्ग स्वायत्ती-करण कर लेता है। नाग भी बङ्गसे अधिक प्रभाव नहीं दिखा कर बङ्गमें लीन हो जाता है। इसलिये और काष्ठौषधियोंकी तुल्य नाग भी बङ्गका अनुपान हो सकता है। बङ्ग तामेमें लीन होता है; क्योंकि बङ्गकी अपेक्षा ताम्रके परमाणु और भी सूक्ष्म हैं। बङ्गको अग्निमें रखें तो शीघ्र ही द्रुत हो जायगा। ताम्र उतनी जल्दी नहीं हो सकता। बङ्गसे ताम्र गुणोंमें भी बहुत अधिक है। इसीवास्ते इसका शोधन मारण बङ्गकी अपेक्षा बहुत कठिन है। बङ्ग यदि अशुद्ध रह जाय तो उतना कुछ नुकसान नहीं कर सकता और ताम्र अशुद्ध रह जाय तो प्राण तक लेकर छोड़े। जो प्रसन्न होकर अनुग्रह अधिक करता है वह रुष्ट होकर निग्रह भी खूब करता है।

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः।
निग्रहोनुग्रहो नास्ति सरुष्टः किं करिष्यति ॥ १ ॥

इसलिये ताम्रके अनुपान काष्ठौषधि, नाग, बङ्ग समझने चाहिये।

"शुल्वन्तारे" तामा चाँदीमें लीन होता है ; क्योंकि ताम्रसे चाँदीके परमाणु सूक्ष्म हैं। ताम्रकी भस्म जिस आसानीसे होती है ; चाँदीका मारण उससे कठिन है और उसकी अपेक्षा गुण भी अधिक है। मूल्य भी अधिक है।

सुवर्णके परमाणु सर्व धातुओंसे सूक्ष्म और घनीभूत तथा अधिक गुणकारी हैं। अग्निमें सर्व धातु बिना लांगके भस्मी भूत हो जाते हैं। सुवर्णमें ६ महीने तक भी अग्नि लगाया जाय तो भी रत्ती भर भस्म नहीं हो सकेगा। पारदके ऊपर सर्व धातु गिर्‌ली

हैं; परन्तु सुवर्ण इतना भारी है कि पारदमें भी डूब जाता है। तब ही तो कहा है कि "मृदः कोटिगुणं स्वर्णम्"। "कनकंच लीयते सूते" सुवर्ण पारदमें लीन हो जाता है। बुभुक्षित पारदमें लीन होना तो कोई बात ही नहीं; किन्तु सुनार लोग भूषण बनाते हैं और रेतीसे रेत कर चुकते हैं तब जो सुवर्णका चूर बचता है उसको पारेमें मिलाकर इकट्ठा करनेको अग्नि पर रखते हैं तब चार छः मासेमेंसे एक दो रत्ती घट ही जाता है। हमने सुनारोंसे पूछा कि भाई, एक दो रत्ती सुवर्ण कहाँ गया? तब वे कहने लगे कि सुवर्णका स्वभाव है कुछ न कुछ खा ही जाता है।

"कवलितगगने" यह विशेषण पारदका लगानेसे प्रकृति-पुरुषका सम्बन्ध दिखाया। गगन (अभ्रक) पार्वतीका शुक्र है पारद शिवशुक्र है। अर्थात् ब्रह्म जब प्रकृतिका आश्रयण करते हैं तब ही सृष्टि होती है और प्रकृतिके ही आश्रयणसे लय होता है।

पारद भी "विड" योगसे जब अभ्रकको ग्रस जाता है तब ही अधिक समर्थ होता है। मनुष्यको भी पारद सेवन कराते हैं तो प्रथम अभ्रक सेवन करानेसे ही अधिक गुण करता है। इसको आयुर्वेदके रसायनशास्त्रमें "क्षेत्रीकरण" संस्कार कहते हैं। ठीक है विना क्षेत्रके बीज अंकुर कैसे उत्पन्न कर सकता है? अभ्रक पार्वतीजीका शुक्र होनेसे क्षेत्र है, पारद शिवशुक्र होनेसे बीज है। "योगिनो यथा लीनाः" इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्ममें लय दो प्रकारका है। जो जीव योगाभ्यास लक्षण भक्ति नहीं उपार्जित करते; किन्तु सृष्टिके अवसान होनेसे ब्रह्ममें लीन होते हैं वे अमृत रूप नहीं होते। किन्तु "बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च" फिर उनको संसारमें आना पड़ता है; और जो योगाभ्यास करके परमात्म-शरणागति प्राप्त करता है उसके सञ्चित कर्म और प्रारब्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं; इसलिये वे अमृत (मुक्त) हो जाते हैं। ठीक है पानीको कैसो ही कीचमें मिला दो, सूर्यनारायणके पाद (किरण) से आकर्षित होगा तो सर्व पङ्कको त्याग कर ही जायगा। इसी प्रकार यह जीव भी जब भगवच्छरणागति प्राप्त करता है, तब सर्व कर्मकर्दमको इसी जगह छोड़ कर चला जाता है। दार्ष्टान्तमें भी योगियोंको

तरह कुल धातुओंका शोधन करके वे पारदमें लीन की जायँ तब ही सम्पूर्ण रोग निवृत्ति लक्षण अमृतपदको प्राप्त कर सकते हैं। इत्यादि पदार्थविज्ञान भी आयुर्वेदके रसायनशास्त्रसे पदे पदे लब्ध होता है। आज मैं इस लेखको इसी जगह समाप्त करता हूँ और आयुर्वेदके रसायनशास्त्र पर बहुत दिनसे "रसायनसार" श्रीवेङ्कटेश्वरादि समाचारपत्रोंमें छप रहा है उसको पुस्तकाकार निकाल कर यथाशक्ति वैद्योंका सन्तोष करूंगा। इस भारतवर्षमें बड़े बड़े विद्वान् पड़े हैं, परन्तु वैद्यपरिषत्के मन्त्री महाशयोंने मुझे आज्ञा दी थी। इसलिये यथाशक्ति लिख कर आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ।

पारदे यावती शक्ती रोगनिर्मूलनक्षमा
तावन्तो नासतेरोगा वातपित्तकफोद्भवाः
हरेर्नाम्नां यथाशक्तिर्यावती पापनाशिनी
तावत् पाप तु पापीयान् कर्त्तुमीष्टे न कश्चन

यह लेख त्रिफलाके रसायन हुए पानीकी स्याहीसे लिखा गया है।

रसायनशास्त्र।

[पं० रामाधीन शास्त्री, ललित हरि विद्यालय पीली भीत]

:o:

जब हम विषय पर ध्यान देते हैं कि हमारे आयुर्वेदमें कौन सी ऐसी विशेषता है जिसके कारण अब तक नाना कण्टकोंके होते हुए भी आयुर्वेद संजीवित है, तब यह दिखाई पड़ता है कि हमारे आयुर्वेदके प्रणेता ब्रह्मर्षियोंने इसकी मूलको दृढ़तम करनेके लिये एक अनन्य पदार्थ रख दिया है, जिसे प्राप्त करनेकी सामर्थ्य बिना ऋषि सन्तानके दूसरोंको कदापि न हो सके। प्रिय पाठक वृन्द वह एक मात्र प्रकरण रसायनशास्त्र है।

यद्यपि आज कलके कुछ नवीन अविश्वासी जन सोमवल्ली आदिके गुणोंसे चकित होकर झटही यह कहने लग जाते हैं कि यह

सब बातें असम्भव हैं; परन्तु उनका कहना ऐसा है जैसे राममूर्तिके प्रादुर्भावसे पूर्व बहुतेरे जन भीमादिके बलको झूंठ बतलानेमें कुछ संकोच न करते थे। इसलिये इस समय आयुर्वेदज्ञोंको इस बातकी आवश्यकता है कि वे लोग केवल धनोपार्जनको ही वैद्यक साफल्य-कारक न मान कर कुछ काल पर्वतोंमें टक्करें खावें और वहांसे सोमलतादिक दिव्य औषधियोंको लावें, और लोगोंके सम्मुख प्रत्यक्ष करावें तब सबको आपसे आप यह निश्चय हो जायगा कि आयुर्वेदका रसायनशास्त्र अनन्य पदार्थ है। यद्यपि पाश्चात्य विद्वान भी आयुर्वेद की बहुतेरी बातोंमें साफल्य प्राप्त कर चुके हैं; तथापि रसायनशास्त्र एक ऐसा प्रश्न है कि जिसका हल करना सिवाय ऋषि सन्तानके दूसरे की सामर्थ्य नहीं और यह एक ऐसा प्रश्न है कि इसके हल होते ही सारी मानव जाति भारतीय आयुर्वेदके चरणों पर शीस झुकावेगी, परन्तु इसके हल करने के लिये सबसे प्रथम यह आवश्यकता है कि अपने हृदयमें अपने पूर्वजोंकी बातका पूरा पूरा विश्वास हो; तदनन्तर उन्हींको नाईं जङ्गल और पहाड़ोंमें वर्षों टक्करें मारी जांय फिर तो कोई बाधा नहीं पड़ सकती। यदि कोई यह कहे कि हम बहुत सा धन कमाकर पहाड़ोंमें जावें और वहां झप्पानों पर बैठ बैठ कर सोमवल्लीकी खोज करें तो यह सर्वथा भूल है, देखो आयुर्वेदके नेता क्या कहते हैं :—

"दिव्यानामौषधीनां यः प्रभावः सभवद्विधैः।
शक्यः सोढुमशक्यस्तु न सोढुमकृतात्मभिः" चरके॥

अर्थात् जब तक आत्मबल हममें नहीं तब तक आर्थिक बल चाहे जितना हो पर वह किसी कामका नहीं। प्यारे भाइयो, हम आप क्या चक्रवर्तियोंसे भी अधिक धनी हो सकते हैं? नहीं नहीं, जब यह बात है तब सिद्ध हुआ कि रसायन शास्त्रकी प्राप्ति लंगोटी-बन्द ही कर सकता है। धनीकी सामर्थ्य नहीं कि रसायन पा सके नहीं तो कोई भी धनिक कराल कालके गालमें न जाता। मित्रो, यह अवसर है कि हम आप लोग निधड़क हो अपना प्रयत्न कर सकते हैं। यदि आज हम पर किसी दुराचारी जातिका शासन होता तो गृहरक्षासे ही फुरसत न पाते। अब श्री ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी राजकतामें भी यदि आयुर्वेदका उद्धार न हुआ तो फिर कब इसके

उद्धारकी आशा की जा सकती है? प्रिय पाठकवृन्द! मैंने अपने ऊपर एक छोटी सी रसायनको अनुभव किया और बिलकुलही सत्यपाया एक रत्ती भर भी अन्तर न हुआ। इसलिये मैं यह बलपूर्वक कह सकता हूँ कि आर्षग्रन्थ चरक और सुश्रुतमें एक एक अक्षर विश्वासके योग्य है। क्योंकि स्थालीमें से एकही तण्डुल टटोला जाता है उसीसे सम्पूर्ण परीक्षित माना जाता है।

जिस समय मैंने चरकसे यह रसायन परीक्षार्थ चुना था* उस समय बहुतोंने मेरे प्रयासको देखकर यह कह दिया था कि यह व्यर्थ काम है; परन्तु अधिक नहीं केवल दो मासके ही सेवनसे मुझे यह नितान्त निश्चय हो गया कि रसायनशास्त्र बिलकुल ठीक है और अनुभव करके महर्षियोंने ग्रन्थबद्ध किया है। अतएव किसीको आयुर्वेदीय औषधियों पर अश्रद्धा करनेका कारण नहीं। प्रिय पाठको, जब हमारे परम माननीय श्री १०८ सुश्रुताचार्य साफ शब्दोंमें यह कह रहे हैं कि पञ्चनद देशीय "सिन्धु" नामक महानदके निकासके स्थानमें अनेक विध सोम प्राप्त होते हैं तब हम लोग यह कैसे कह सकते हैं कि यह झूठ है। प्यारे आयुर्वेदोद्धारको, आलस्य त्यागो, आत्मबल धारो, हिम्मत न हारो, अपने पूर्वजोंके निर्दिष्ट स्थानोंकी ओर मण्डली बांध कर सिधारो, यह विचार न करो कि हमें दुःख होगा; अन्तमें सुखही मिलेगा। देखो अन्य मानवजातियां कितने साहसके काम करती हैं। पृथिवीके ध्रुवको देख लेने या न देख लेने मात्रसे कोई फल तो न हो जायगा, कोई अमर तो न हो जायगा; परन्तु ऐसे कौतूहलवर्धक काममें भी वे वर्षोंतक लगे रहते हैं। जभी तो आज सौभाग्यकी परम शिखर पर अपनी जातिको पहुँचा चुके हैं।

प्यारे! आपका तो बड़ा भारी उद्देश्य है। केवल भारत ही नहीं सारे भूमण्डल पर आरोग्य और निरामय फैलाना आपका कर्तव्य है और अपनेको भी परमोच्च शिखर पर पहुँचाना है फिर क्या इतने बड़े कामको आप खानेका हलुवा समझते हैं? नहीं इस काममें

*महाराज, उसके सप्रयोग सेवन और लाभके क्रमको लिख देनेमें आपकी क्या कोई हानि थी? क्या अभी तक दिल खोल कर बात करनेका समय नहीं आया?

वर्षों बीत जायँगे तब साफल्य प्राप्त होगा। देखो आपके महर्षि क्या कहते हैं? सप्त भिरेव कारणैः रसायन न सम्पद्यते अनात्मवत्वात्, आलस्यात्, दारिद्र्यात्, प्रमादाद्, व्यसनात्, पापाचारात्, भेषजापमानाच्च" सुश्रुत-चिकित्सिते अ। २०। इनमेंसे आत्मवल और अनालस्यको सर्वतः प्रथम आवश्यक माना है।

मैं साहससे कह सकता हूँ कि यदि आपलोग आलस्य त्याग कर आत्मवल धारण करें तो औषधराज सोमका मिलना कुछ कठिन नहीं। प्राचीन समयमें जो चरकादिक महर्षि वैद्यकसम्मेलन करते थे उनका यही उद्देश्य होता था कि कागजी घोड़ोंको न दौड़ा कर झट ही हिमालय पर मण्डलोकी मण्डली चढ़ जाती थी; और दिव्यौषधियों को ढूंढ़ लोकोपकारमें लग जाती थी।

प्यारे आयुर्वेदोद्धारको! इससे बढ़कर कोई भी उपाय रसायनशास्त्रको उन्नत बनानेका नहीं है कि आयुर्वेदज्ञोंका डेप्यूटेशन महर्षि निर्दिष्ट स्थानोंमें प्रति वर्ष दो मास व्यतीत करे। यही रीति पुरानी चली आयी है, और इसी रीति पर आचरण करनेसे सम्पूर्ण आयुर्वेदकी त्रुटियां दूर हो सकती हैं। प्रिय पाठको, यह बात अनुचित सी आपको प्रतीत हुई होगी कि "रसायनशास्त्र" के प्रस्तावमें मैने केवल सोमवल्ली पर इतना बलदिया* परन्तु यह ध्यान रहे कि "सोम" औषधराज है। यदि आपने सोमको प्राप्त कर लिया तो फिर कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रह सकता। क्या अष्टवर्ग, क्या अष्टसिद्धि क्या नव निधि, सब कुछ एक सोमके प्राप्त करनेसे मिल सकता है। यदि आपको यह विचार हो कि "न तान् पश्यन्ति अधर्मिष्ठाः" यह सुश्रुतका कथन हमको सोम प्राप्त करनेमें वाधक होगा तो मित्रो, यदि उसके मनमें परोपकारके संस्कार हों तो प्राणाचार्यसे बढ़कर और कौन धार्मिक हो सकता है? देखो चरकाचार्य क्या कहते हैं:—

"परोभूतदयाधर्मः इति मत्वा चिकित्सया
वर्तते यः स सिद्धार्थ सर्वमेवाति वर्तते"

---

*यही नहीं बल्कि अपने वक्तव्य विषयकी व्याख्या तक न की; रसायनकी परिभाषा तक न बतलायी। सम्पादक।

आयुर्वेदोद्धारको, यदि आपको आयुर्वेदीय एवं जातीय एवं आत्मीय उन्नतिकी कामना है तो इस उपर्युक्त वचन पर ध्यान धरो, परोपकार पर प्राण निछावर करो, तभी रसायनशास्त्रकी रक्षा होगी और आयुर्वेद आयुर्वेद होगा। तभी आप लोगोंका वैद्यक-सम्मेलन सफल होगा तभी मैं भी अपनी लेखनीको सफल समझूंगा।

सम्प्रति अपने वैद्यक और वैद्योंमें

किन पूर्तियोंकी आवश्यकता है ?

[ले०—श्रीमनोहरलाल वैद्य, धुन्धीकटरा, मिर्जापुर।]

—:०:—

किसी देशकी उन्नतिके विषयमें जब कोई प्रश्न उपस्थित होता है, तब अनेक त्रुटिपूर्ण बातोंकी ही ओर लोगोंका ध्यान पहले जाता है; और बात भी यही ठीक है कि त्रुटियाँ जब दूर हो जाती हैं तब उन्नतिका मार्ग भी परिष्कृत हो जाता है। बड़े हर्षकी बात है कि वैद्यक-सम्मेलन द्वारा उन त्रुटियोंकी ओर कतिपय वैद्य महाशयोंका ध्यान आकर्षित हुआ है। उपर्युक्त प्रश्नके उत्तरमें मैं अपनी स्वल्प बुद्धिके अनुसार कुछ कहता हूँ। आशा है कि मेरी क्षुद्र सम्मति अथवा उत्तर उपस्थित वैद्य महानुभावोंके सम्मुख अवश्य पढ़ा जायगा।

१—सम्प्रति वैद्यकमें एक ऐसे निघण्टुकी आवश्यकता है, जो औषधियोंके प्रत्येक अङ्गके गुण तथा अवगुणको प्रकट करे, उसमें एक प्रकार वैद्यक सम्बन्धी सम्पूर्ण वस्तुओंका संग्रह रहे। उसमें वैद्यकवाची शब्दोंके संग्रहकी भी ज़रूरत है। यह एक प्रकारसे वैद्यक-कोषका काम देगा और वैद्यक विषयक किसी ग्रन्थकी टीका करनेमें पूरी सहायता देगा।

२—हर एक वैद्यको अपने अपने नगर तथा ग्रामके पुराने समयके वैद्योंके जीवन-चरित्र प्रकाशित करनेकी परम आवश्यकता है। उन जीवनचरित्रोंमें उन वैद्योंके अन्य गुणोंके साथ उनकी खोज, विचित्र रोगोपचार तथा औषधप्रयोगका भी वर्णन रहे। सम्मेलन द्वारा ऐसी पुस्तकोंका संग्रह किया जाना परम लाभदायक है।

३—वैद्योंके शल्य अङ्ग (Surgery) की एक पुस्तक अङ्गरेज़ी रीतिसे बनायी जाय, जिसमें वैद्यकशास्त्रोक्त क्रियाओंका सन्निवेश हो।

४—पुराने समयके वैद्यक ग्रन्थोंकी खोज और उनका प्रकाशित कराना इत्यादि। वैद्योंमें कुछ और बातोंकी आवश्यकता है, उन्हें भी नीचे लिखता हूँ:—

१—वैद्योंमें राजविद्याका प्रचार अत्यन्त उपयोगी होगा। प्रत्येक वैद्यको चाहिये कि वह अपनी सन्तानको संस्कृत और अङ्गरेज़ी पढ़ा कर तब वैद्यककी शिक्षा दे।

२—वैद्योंको शल्यविभागमें शारीरिक अवश्य जानना चाहिये।

३—आयुर्वेदविद्याकी सीमाके भीतर विज्ञान (सायंस) और कुछ यूनानी भी रहनेकी आवश्यकता है। इन सबका जानना भी वैद्योंके लिये हितकर है।

४—तीन कोटिके वैद्योंके बनानेकी ज़रूरत और उनके लिये ग्रन्थोंकी सीमा तथा प्रबन्ध।

५—स्त्रियोंको भी वैद्य बनानेकी ज़रूरत है। उनके लिये भी ग्रन्थोंकी सीमा तथा प्रबन्ध होना चाहिये।

६—प्रति साल सभी वैद्योंको प्रति कार्तिक शुक्ल १३ को धन्वन्तरि सभा करनी चाहिये और उस दिन धन्वन्तरि भगवानकी मूर्तिकी सविधान पूजा होनी चाहिये। उसमें औषधालयके सभी सामान तथा शस्त्रोंका महाराज धन्वन्तरिके सामने रखना, मित्रों तथा वैद्यों का आह्वान करना, उनको प्रसाद देना तथा अच्छे अच्छे विषयों पर वार्तालाप और व्याख्यान होना चाहिये। जैसे स्वास्थ्यरक्षा, ब्रह्मचर्य इत्यादि, इसी प्रकार एक सभा काशी जीमें प्रतिवर्ष होती है। एक बार मुझे भी उस सभामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सभाका दृश्य देखने ही योग्य था*।

७—वैद्योंके शेयरसे बंगाल, बाम्बे, उत्तर भारत और मदरास प्रान्तोंमें क्रमसे चार वृहत औषधालय खोले जांय। इन औषधालयों से वैद्य तथा अन्य लोग सुपरीक्षित औषधियों को मंगावें। उनमें चन्द्रोदय, संस्कारित पारद धातुओंके सत्व तथा भस्म तैयार रहें। काष्ठ औषधियोंके लिये भी यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिये।

*अब भारतके अनेक स्थानोंमें ऐसे उत्सव हुआ करते हैं। सम्पादक।

८—आसव आदि औषधि रूपमें वैद्यक रीतिसे उन औषधालयों-में बनना चाहिये। जिन वैद्योंको आसवकी आवश्यकता हो वे उचित मूल्य पर उन औषधालयोंसे मंगावें।

९—भल्लातकको उत्तम प्रकारसे बनाना चाहिये। क्योंकि इसका प्रयोग असाधारण होने पर भी परम लाभदायक है। उसके विष तथा उपद्रवोंके शान्त करनेको युक्ति होनी चाहिये।

१०—एक स्थायीकोषकी परमावश्यकता है। प्रत्येक प्रान्तके वैद्य उस कोषको स्वदेश भाइयोंके द्रव्यसे सबके कल्याणके लिये भर दें।

११—एक समाचार पत्र और एक मासिक पुस्तक सम्मेलन द्वारा निकालनेकी आवश्यकता है।

१२—वैद्योंमें व्याख्यानदाताओं और लेखकोंकी संख्या बढ़ाने-की आवश्यकता है।

१३—प्रत्येक वैद्यको अपनी सन्तानोंको ब्रह्मचर्यके साथ वैद्यक पढ़ाने तथा ब्रह्मचर्यके महत्वको उनके हृदयमें प्रतिष्ठित करने-की चेष्टा करनी चाहिये।

१४—रसायन, तथा आयुवर्द्धक प्रयोगादिकोंके विषयमें विशेष विज्ञप्ति तथा उनकी अनुभूत बातों का प्रकाश करना और जानना तथा प्रचार करना अत्यन्त लाभदायक है।

१५—आपसमें वैद्योंको एक दूसरेसे परिचय और सहानुभूति रखनेकी अवश्यकता है इसके लिये वैद्योंको सम्मेलनकी उन्नतिमें प्रयत्नशील होना उचित है।

१६—औषध बनानेवालेकी प्रार्थना पर भारतीय वैद्यों द्वारा बनी हुई पेटेण्ट औषधियोंकी जांच, अनुभवी वैद्योंकी एक समिति द्वारा हो। जो लोग वैद्यक यथार्थमें नहीं जानते और इधर उधर-की दवा लेकर एक पेटेण्ट औषधि बनाकर चला देते हैं उनके लिये सरकारसे एक ऐसी आज्ञा ली जाय जिससे वे अपनी मिथ्या औष-धियोंसे लोगोंको ठगने न पावें। क्योंकि इन अपढ़ वैद्योंके कारण उत्तम वैद्योंकी सर्वथा हानि होती है।

प्राणिमात्रका कल्याण करना वैद्योंका दायित्व है। वैद्योंको सर्वदा स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवहारों पर विचार रखना चाहिये और वह प्रबन्ध करना चाहिये जिससे खानेपीनेके पदार्थ, जैसे घृत दुग्ध इत्यादि, विशुद्ध रूपमें मिलें। मिलावटकी चीजोंके व्यवहारसे लोगोंको रोकने तथा सरकारसे ऐसी वस्तुओंके बेचनेवालेको मना कराने तथा इसके लिये नियम बनवानेकी आवश्यकता है। वैद्यमात्र का कर्तव्य है, कि गोभक्ति रखें और उनकी सेवा करें क्योंकि गौमाता की कृपासे ही वैद्यक की अनेक शक्तियां उनके मस्तिष्कमें आती तथा सन्मुख हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं।

वैद्य–समीक्षा।

[पंडित किशोरीदत्त शास्त्री राजवैद्य, रिवाड़ी]

समीक्षा शब्द समालोचनाका पर्य्यायवाची है। सुतरां समालोचनासे जो गुण प्राप्त होते हैं समीक्षासे भी वे ही प्राप्त होते हैं। प्राचीन समयमें भी समीक्षाका प्रचार था। क्षेमेन्द्र कविने अपनी "औचित्यविचार चर्चा" नामकी पुस्तिकामें बड़े बड़े उद्भट कवियोंके प्रयुक्त विषयोंकी समीक्षा की है। समीक्षासे जो लाभ होते हैं, अथवा हो सकते हैं, उनको विरले ही विद्वान् जानते हैं। समीक्षाका प्रथम लाभ अपने किये हुए दूषणोंका परित्याग करनेका मौका मिल-जाना है; और दूसरा लाभ अपनी उन्नति करनेका मूल साधन है। परन्तु आजकलका जमाना कुछ उलटा ही है। इस जमानेमें समीक्षा-को लोग और विशेषकर वैद्य लोग अपनी मानहानि समझने लगते हैं और कई बार समीक्षकों पर विद्वानोंके वाग्बाण बरसने लगते हैं। आज मैं जिस विषय पर दृष्टिपात कर रहा हूं वह "वैद्य समीक्षा" है। वैद्यसमीक्षामें सभी कोटिके वैद्यमात्रकी आलोचना होगी। अतः संभव है कि हमारे वैद्यकशास्त्रके व्यवसायी कुछ

आलोचनाको बुरी समझेंगे ; और इसीलिये संभवतः मुझे उनके वाग्वाणोंका लक्ष्य बनना पड़े ; किन्तु वैद्य मात्रसे मेरा सविनय निवेदन है कि वे इस समीक्षाको ध्यानसे देखें और अपने दुर्गणोंको (यदि वास्तवमें वे दुगण अपनेमें समझते हों तो) परित्याग करदें। नहीं तो कमसे कम यह अवश्य ध्यान रखें कि उनमें जो दुर्गण हैं, अथवा न्यूनता हैं, उनमें अपनी भावी सन्तानको लिप्त न करें। जिससे उनकी भावी सन्तान आयुर्वेदमें पूर्ण दक्ष होकर मुमूर्षु आयुर्वेदका पुनर्जीवनोद्धार करे ।

योग्य वैद्य और उनका उत्तरदायित्व ।

वैद्योंमें कैसी योग्यता होनी चाहिये, इसके लिये सभी ग्रंथकारोंने अपने अपने ग्रन्थमें कुछ न कुछ लक्षग अवश्य लिखे हैं। यहां तक कि प्रत्येक विषयमें प्रत्येक वैद्यको क्या योग्यता रखनी चाहिये ; उसके न रखनेसे क्या क्या हानियां हो सकती हैं, इनका सविस्तर (अथवा स्वल्प) वर्णन बड़ी बड़ी संहिताओंसे लगाकर वैद्यजीवन जैसी स्वल्प पुस्तिकामें भी मिलता है । प्राचीन समयके वैद्य दो विभागोंमें विभक्त आयुर्वेद विद्याका अनुशीलन करते थे। पहली चिकित्साका एक मुख्य विभाग शल्यतत्र था और दूसरा विभागका चिकित्सा था । इन्हीं दोनों विभागोंका अध्ययन आठ अंग मानके किया जाता था ; जिनके नाम आज भी सुश्रुत और वाग्भट आदि संहिताओंमें मिलते हैं । इन्हीं दोनों विभागोंका अध्ययन-अनुशीलन करनेवाला राजा महाराजाओंके यहां "प्राणाचार्य" पदपर प्रतिष्ठित होता था ।

प्राणाचार्य सभी प्रकारसे राजाका जीवन रक्षक होता था, विचार करनेसे यह बात स्पष्ट ही प्रतीत हो जाती है कि "प्राणाचार्य" वैद्यका पद कितना प्रतिष्ठित और कितना उत्तरदायित्वका है ।

इसी प्रकार साधारण रोगीमात्रसे यह शास्त्रीय उपदेश अज्ञात नहीं है कि "मा बापोंमें चाहे विश्वास न करें ; किन्तु वैद्यमें पूर्ण विश्वास रखें" इससे वैद्य रोगीमात्रका माता पितासे भी अधिक पालक और विश्वास भाजन माना गया है ।

सन्निपात जैसे भयंकर प्राणहारक रोगके आराम होनेपर वैद्यको जो योग्य सम्मान-सांत्वना मिलनी चाहिये शास्त्रकारोंने वैसी ही सम्मान-सांत्वना दी है। वास्तवमें सन्निपातके रोगीके रोगको वशमें करना काले सर्पसे बचानेसे कभी भी कम नहीं है। ऐसे उपकारक वैद्यको प्रसन्न करनेके लिये, उसकी योग्यताका प्रतिमूल्य देनेके लिये, रत्नादिक द्रव्य भी कुछ योग्यता नहीं रखते।

रोगीके जीवन मरण जैसे नाजुक कामोंका पूरा पूरा भार वैद्यके हाथमें रहता है; इसीसे वैद्यको जो योग्यता रखनी चाहिये उसकी इतिमात्राकी कल्पना नहीं कर सकते।

प्राचीन कालके सुयोग्य वैद्योंके स्वर्ण युगोंमें भी कुछ अयोग्य वैद्य अपनी धांधल मचाते आये हैं; इसीसे बड़ीसे बड़ी संहिता और छोटीसे छोटी पुस्तकोंमें उनके दूषणोंका उल्लेख पाया जाता है।

जैसे—"कुर्यान्निपातितो मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनिः।
नत्वज्ञमतमौषधम्" चरकः॥

"अपक्वंदारयेद्यस्तु—यश्चपक्वमुपेक्षते।
श्वपचाविव मंतव्यौ तावनिश्चितकारिणौ" सुश्रुतः॥
"औषधं मूढवैद्यानां त्यजन्तु ज्वरपीड़िताः।
परसंसर्ग संसक्तं कलत्रमिव साधवः" ॥ वैद्यजीवनम्।

कुछ वैद्य उस जमानेमें जालसाज थे। जैसे—
"ग्रंथादस्मादाहरति प्रयोगान् स्वीयंवास्मिन्नाम ये निक्षिपन्ति"
ढुंढुकनाथ।

"प्रगृह्याधिक रुद्रांशं योऽसमीचीन मौषधम्।
दापयेल्लुब्धधीर्वैद्यः सस्याद्विश्वासघातकः" ॥ रसरत्नसमुच्चय।
"लोभयन्त्यातुर मूर्खा विचित्रैः कर्म कौशलैः।
तेभ्योरक्षेत्सदात्मानमात्मायस्मात्सुदुर्लभः" ॥
"घुणाक्षरवत्कंचिदुत्थाप्य नियतायुषम्।
घ्नन्तिवैद्याभिमानेन शतान्यनियतायुषाम्॥" रसरत्नसमुच्चय।
"रोगाणामभिसरा एके हंतारः प्राणिनां।" चरक संहिता।

इस प्रकार चरक, सुश्रुत, वाग्भट, वैद्यजीवन, रसरत्नसमुच्चय, रसेन्द्र चिन्तामणि आदि ग्रन्थोंके इन वाक्योंके आधारपर

प्राचीन समयके अपठित और अभिमानी अयोग्य वैद्योंके उपलक्षण मिलते हैं; परन्तु ऐसोंकी संख्या अधिक नहीं थी, इसका कारण उस समयका राजदण्ड था। उसी राजदण्डके भय और विद्याव्यसनी होनेके कारण अयोग्य वैद्योंकी संख्या नाममात्रको ही होगी। यह बात अनुमानसे स्पष्ट ही प्रतीत हो जाती है।

अर्वाचीन वैद्य।

प्राचीन वैद्योंकी भांति यद्यपि इस समय चाहे अत्युच्च कोटि-के वैद्य उपलब्ध न हो सकें; तथापि योग्य वैद्योंकी इस समय न्यूनता नहीं है। किन्तु जो न्यूनता है वह राजसम्मानकी है। इस समयकी राज व्यवस्था वैद्योंको कुछ आश्रय नहीं देती। इसमें केवल राज्य व्यवस्थाका ही दूषण नहीं है, इसमें वैद्योंका भी दूषण है। राज्य-सम्मानित होनेका वैद्य प्रायः लालसा ही नहीं रखते। यदि वे लालसा रखकर कठिनसे कठिन उद्योग करना आरम्भ करें तो यह राज्यसम्मान श्री उनके चरण कमलोंमें आप ही उपस्थित हो जायगी।

अर्वाचीन वैद्योंके गुण-दोष वर्णन करनेके लिये चार श्रेणी बनाना आवश्यक है। ऐसी दशामें वैद्यमात्र इस समय इन चार श्रेणियोंमें विभक्त पाये जाते हैं। जैसे—

१ सुयोग्य।	२ योग्य।
३ साधारण।	४ अयोग्य।

इन चारों प्रकारके वैद्योंमें जो गुणागुण पाये जाते हैं, हम यहां पर उनका क्रमशः वर्णन करते हैं। वैद्यमात्रको अपने अपने गुण दोषोंका पुनः पुनर्वार विचार करके गुणोंकी वृद्धि और दोषों-का परित्याग करना चाहिये। ऐसा करनेसे उनकी उन्नति होगी और उनके प्यारे आयुर्वेदका जीर्णोद्धार होगा।

१—सुयोग्य वैद्य।

प्रथम श्रेणीके सुयोग्य वैद्योंकी संख्या इस समय भारतमें न्यून ही है। वैद्योंके सद्गुण* वाले जो चिकित्सक आयुर्वैदिक-

*जैसे—आयुर्वेदका गुरुसे पढ़ना, स्वच्छ और दयालु होना, धीर और परोपकारी, सदाचारी होना, शास्त्रका विचार और चिकित्सा कर्मका अनुभव करना, रोगकी परीक्षा करना और रोग शांतिका उत्तम उपाय करना।

कायचिकित्साका अनुशीलन करते हुए भी शल्यतंत्रके ज्ञाता हैं; वे ही इस श्रेणीमें गणनाके योग्य हैं । ऐसे सुयोग्य चिकित्सक विशेषतः बंगाल और दक्षिणभारतमें मिलते हैं । आयुर्वेदके जीवनोद्धारके लिये यदि ये अपने लोभ और अभिमानको परित्याग करके प्रयत्नशील हों तो इस कार्यका शीघ्र ही पूर्ण हो जाना सम्भव है; परन्तु जहां इनके सद्गुण हैं वहां पर इनमें एक दुर्गुण भी है; वह दुर्गुण निष्प्रेमत्व है । यदि अपने योग्य भ्राताओंमें प्रेम करते हुए उन्हें शल्यतन्त्रकी उत्तेजना देने लगें तो (अथवा उनको स्वयं सुयोग्य बनाना आरम्भ करें तो) हमारी आशा बहुत कुछ पूर्ण हो सकती है ।

२—योग्य वैद्य ।

इस कक्षामें हम उन वैद्योंको मानते हैं कि जो काव्य, कोष, व्याकरण, न्याय, सांख्य आदिशास्त्रोंमें अभ्यास रखते हुए आयुर्वेदकी बड़ी बड़ी संहिताओं का अध्ययनाध्यापन करनेसे कायचिकित्सामें चतुर हैं । इन वैद्योंमें वैद्योंके वे सद्गुण भी चाहिये जिनका उल्लेख टिप्पणीमें किया जा चुका है । इस योग्यताके वैद्य इस समय पहिले दरजेके वैद्योंसे कुछ संख्यामें अधिक मिलते हैं । इनमें एक संतोषका महा दुर्गुण है । जिससे ये आमरण-सामर्थ्य रहते हुए भी मध्यकोटिमें ही पड़े रहते हैं । इस कोटिके नवीन युवाओंको उचित है कि वे "हमें इतनी ही विद्या बहुत है" ऐसे सन्तोषको परित्याग करके उच्चकोटिमें प्रविष्ट होनेका उद्योग करते ही रहें । विद्यावृद्धिके लिये संतोष कर लेना महापाप है । जो ऐसा महापाप करते हैं उनका देश सदाके लिये महामूर्ख और आलसी रह जाता है ।

३—साधारण वैद्य ।

इससे पीछे तीसरी कोटिमें साधारण वैद्य हैं । इनकी दशा इनकी संज्ञाके अनुरूप ही है । ये वैद्य प्रायः काव्य, कोष, व्याकरण, न्याय, सांख्य आदि शास्त्रोंका ज्ञान नहीं रखते । आडम्बरसे वैद्योंसे न्यून नहीं प्रतीत होते । और कई एक तो ऐसे सिद्धहस्त हो जाते हैं कि उनकी ख्यातिको देख कर कोई पढ़ेलिखेपनको पूछता ही नहीं ।

इनकी विद्या अमृत सागर, इलाजुल गुर्बामें ही पर्याप्त हो जाती है। यदि बहुत बढ़े तो अशुद्धपाठ माधव या शार्ङ्गधरका थोड़ा बहुत याद होगा। जिनके पिता पितामह वैद्य होते हैं वे भी थोड़ा बहुत देख भाल कर इस कक्षाके योग्य हो जाते हैं। इस कक्षाके सभी वैद्य मामूली इलाजोंको अच्छी प्रकार कर लेते हैं। ऐसे वैद्यों-को अपने ही जीवनमें योग्य वैद्यों की कक्षाके योग्य विद्या लाभ करना चाहिये। अथवा संतानों को अपनेसे कई गुण अधिक योग्य बनाना चाहिये। जिससे उनका व्यवसाय अच्छा हो और आयुर्वेद-की उन्नतिके साथ साथ उनके देशका हित हो।

४—अयोग्य वैद्य।

चौथे दरजेके वैद्य वैद्य कहलानेके योग्य नहीं। ये अपनेको अयोग्य रहते हुए भी वैद्य लिखते हैं। इनसे किसी प्रकारका इलाज नहीं हो सकता। इनके व्यापारका कुछ ठिकाना नहीं, ये अनेक पेशे करते हैं। कुछ मूर्ख झाड़ फूंक जैसे धूर्त कर्मके साथ वैद्यकका पेशा करते हैं; किंतु इनको कुछ ज्ञान ही नहीं होता। इनको सारे अताइयोंके प्रयोग याद रहते हैं। जो कुछ न जान कर अपनेको वैद्य और हकीम लिखते हैं ऐसे धूर्त विज्ञापनबाजोंकी संख्या इसी कक्षामें है। ऐसे व्यवसायी भाइयोंको ईश्वर सुबुद्धि दे। यही प्रार्थना है।

उपसंहार।

उपसंहारमें सब श्रेणियोंके वैद्य मात्रसे मेरा सविनय निवेदन है कि इस समीक्षामें अर्वाचीन वैद्योंकी जो वर्णना हो गयी वह मैंने लेखके प्रसंगवश की है, इसमें मेरा कुछ द्वेष नहीं है। मेरी आन्तरिक इच्छा यही हैं कि मैं इस लेख द्वारा वैद्यमात्रको उत्तेजना देकर उनमें कर्त्तव्यपथ पर प्रवृत्त होनेकी इच्छा उत्पन्न कर दूँ। इसी आशयसे यह चतुर्थ वैद्यक सम्मेलनका दूसरा लेख सम्मेलनकी सेवामें अर्पण करता हूँ। आशा है कि स्वीकृत होगा।

पञ्चकर्म ।

[पण्डित रामदयालु शर्म्मा राजवैद्य, अजमेर]

काल की अद्भुत महिमा है। पृथ्वीतलका रत्नदेश भारतवर्ष एक समय था जब संसारके सब देशोंका मूर्धन्य था, जगद्गुरु था, विद्याओंका भण्डार था, वेद और उसके अंग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष) एवं उपवेद (गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद और अर्थवेद) इसी प्रकार नाना विद्या, नाना कला और भांति भांतिके शिल्पमें इस देशके मनुष्य पूर्ण निपुण थे। उस समय आयुर्वेद भी कितना उन्नत होगा, ध्यान करनेसे रोमाञ्च होता है; क्योंकि हज़ारों वर्षों तक नष्ट-भ्रष्ट होकर भी प्राचीन आयुर्वैदिक ग्रन्थोंके जो कुछ भी भग्नावशेष हम तक पहुँचते हैं वे ही हमें महा आश्चर्यमें डालते हैं। लोग कहते हैं कि आयुर्वैदिक चिकित्सापद्धतिमें कुछ नहीं, उन्हें सुश्रुत और चरकके पुराने पन्ने उलट कर देखने चाहिये; उन्हें पता चल जायगा कि आयुर्वैदिक चिकित्सापद्धतिमें कुछ है या नहीं। हम भारतवासियोंकी बुद्धि भी कैसी मलिन होगयी है, हम लोग अपने रत्नको कुछ न समझ कर उसकी अवहेलना करते हैं और हमारा पड़ोसी अपने मिट्टीके खिलौने पर वार्निश करके उसे सुन्दर चमकीला बना कर हमारे सामने लाता है तो अपने रत्नको फेंककर उसे लेने दौड़ते हैं। ऐसा न होता तो आयुर्वेदके पञ्चकर्म जैसे महत्कर्म और चिकित्साके मुख्य अंगका तिरस्कार न होता। आप लोग आश्चर्य न करें, १० वष हुए जब मैं स्वयं अनेक रोगोंसे आक्रान्त होकर महाकष्ट पारहा था, तब आयुर्वैदिक ग्रन्थों का परिशीलन करते हुए मेरा ध्यान सहसा पञ्चकर्म की ओर आकर्षित हुआ। उसको पूर्वापर विचारपूर्वक पढ़नेसे मुझे विश्वास हो गया कि पञ्चकर्म द्वारा मैं अपनी गयी हुई तन्दुरुस्तीको फिर पासकता हूँ; परन्तु कोई रोगी अपनी चिकित्सा आप नहीं कर सकता, वह चाहे अच्छा वैद्य ही क्यों न हो। इसके सिवाय पञ्चकर्म मेरा अनुभूत न था, इस लिये सोचा कि पञ्चकर्मके किसी तजर्बेकार वैद्यको बुलाकर उनकी सहायता

लेनी चाहिये। इसलिये कलकत्ता, बनारस, मथुरा आदि कई स्थानोंमें ऐसे वैद्योंकी खोज की गयी, परन्तु सब जगहसे एक ही उत्तर मिला कि "पञ्चकर्म हमारा अभ्यस्त नहीं" अनेक वैद्योंसे ऐसा उत्तर पाकर मुझे एक प्रकारसे बड़ी निराशा और साथ ही बड़ा आश्चर्य्य भी हुआ। मैं इस चिन्तामें था कि अब क्या करना चाहिये कि श्रीयुत भाई नथमलजी त्रिपाठीने मुझे धीरज दिया, कहा 'घबराते क्यों हो, तुम स्वयं वैद्य हो, शास्त्र तुम्हारे सामने हैं, ऋषियोंकी आज्ञाके अनुकूल बुद्धिपूर्वक चलते चलो, कभी धोखा न होगा, परमेश्वर मदद करेंगे और मैं तुम्हें सब तरह सहारा दूँगा" इन वाक्योंसे मुझे बहुत कुछ सन्तोष हुआ और मैंने शरदृऋतुके आरम्भमें कार्य्यारम्भ कर दिया। ईश्वरकी कृपासे पांचों कर्म साङ्गोपाङ्ग पूर्ण उतर गये और किसी प्रकारकी व्यापत्तिका सामना नहीं करना पड़ा। कर्मकी समाप्ति पर मुझे अद्‌भुत चमत्कार दीख पड़ा। मेरा शरीर एकदम सबल, फुर्त्तीला और नया सा मालूम होने लगा, यद्यपि उसके पश्चात् मैंने किसी रसायनका प्रयोग भी नहीं किया था। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, विशेष कर पञ्चकर्मके नये तजर्बेने मेरी चिकित्सापद्धति और इस शास्त्रकी जानकारीमें एक नयी रूह फूंक दीं। मैं हठात् बड़े बड़े पिण्डरोगी और निराश बीमारोंको भी अपनी चिकित्सामें लेने लगा और इस कर्मसे मुझे सफलता प्राप्त हुई। मैं अपने सहयोगी वैद्य भ्राताओं और माननीय बुजुर्गोंकी सेवामें निवेदन करता हूँ कि पञ्चकर्म आयुर्वेदमें बड़े महत्वका प्रकरण है, हम सबको इसका यथार्थ अनुभव प्राप्त करके इससे लाभ उठाना चाहिये। इसके बराबर शरीरशोधक और बलवर्द्धक कर्म किसी चिकित्सा-पद्धतिमें भी नहीं है। यूनानी पद्धतिके जुलाब और मालजोबन इसके सामने कुछ हक़ीक़त नहीं रखते। मैंने वे स्वयं लेकर देखे हैं और अनेक रोगियोंको कराके भी इनका अनुभव किया है। डाक्टरी चिकित्सापद्धतिमें इस प्रकारका कोई संविधान नहीं है। आवश्यकता होती है तो अरंडीके तेल या साल्ट आदि देकर दो चार दस्त करा लिये जाते हैं। कभी कभी पिचकारीसे भी दस्त कराया जाता है। कुछ कमजोर बीमारोंको दूध आदि भी पिचकारीके द्वारा ग़िज़ाके लिये पहुंचाते हैं और बस। इस क्रमसे, इस उपयोगितासे

किसी चिकित्सापद्धतिमें भी इन कर्मोंका ऐसा प्रयोग नहीं है जैसा आयुर्वेदमें है।

शरीरमें विकृत दोषोंके अधिक संग्रह हो जानेसे ही बड़े बड़े रोगोंकी उत्पत्ति होती है। उन बहुत कालसे सञ्चित दोषोंको झाड़ूकी तरह बुहार कर साफ़ कर देनेमें जैसा पञ्चकर्म समर्थ है वैसी कोई चिकत्सा नहीं। जैसा कि कहा है :—

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जितालङ्घनपाचनैः।
ये तु संशोधनैश्शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥

पञ्चकर्म ये हैं-वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन और नस्य। जैसा कि लिखा है:—

वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम्।
एतानि पञ्चकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः॥

परन्तु पञ्चकर्मके प्रथम स्नेहन और स्वेदन अवश्य करना होता है। स्नेहन और स्वेदन पञ्चकर्मकी नींवके समान हैं, इन्हींके ऊपर पञ्चकर्म रूप शुद्धिकी इमारत चुनी जाती है।

पञ्चकर्मसे प्रथम स्नेहन कर्म किया जाता है कि जिससे कोष्ठ चिकना हो जाता है और रक्तादि धातुओंमें जो दूषित मलादि होते हैं वे सब भी चिकने हो जाते हैं। वायुका अनुलोमन होता है, जाठराग्नि प्रदीप्त होता है, शरीर नम्र और सचिक्कण होकर मलको बाहर निकाल देनेकी योग्यता प्राप्त करता है; और शरीरमें बलका सञ्चार भी होता है। जैसा कि सुश्रुतमें लिखा है :—

स्नेहसारोऽयं पुरुषः प्राणाश्च स्नेहभूयिष्ठाः स्नेह साध्याश्च भवन्ति।

स्नेहके पश्चात् स्वेदन कर्म है, स्नेहनके पश्चात् स्वेदन कर्म कैसा उपयोगी और प्राकृत है। स्वेदनसे वह स्नेह शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्गोंको और भी अधिक मुलायम कर देता है और उससे सम्पूर्ण शरीरका दूषित मल फूल फूल कर और खंच खंच कर कोष्ठमें आ जाता है जैसा कि शाङ्गधरमें लिखा है :—

स्वेदाद्धातुस्थितादोषाः स्नेहस्निग्धस्य देहिनः।
द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गता यान्ति विरेकताम्॥

वातकफके कितने ही रोग तो केवल स्वेद कर्मसे ही दूर हो जाते हैं; क्योंकि स्वेदनसे रोमरन्ध्र खुल जाते हैं, त्वचा मुलायम

हो जाती है और वह पसीना निकालनेके अपने स्वाभाविक कर्मको करने लगती है। जिससे शरीरका बहुत सा दोष पसीनेके रास्तेसे ही होकर निकल जाता है।

सुश्रुतमें चार प्रकारका स्वेद कहा है—ताप, ऊष्म, उपनाह और द्रव। चरकमें तेरह प्रकारका वर्णन किया है, यथा :—

संकरः प्रस्तरो नाड़ी परिषेकोऽवगाहनम्।
जेन्ताकोऽश्मघनः कर्षुः कुटीभूः कुम्भिकैवच॥
कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदश।

प्रस्वेदोंके इतने प्रकार कहनेका प्रयोजन यह है कि भिन्न भिन्न रोगोंमें रोगियोंके शरीरकी योग्यता भी भिन्न भिन्न होती है। इसलिये जिसकेलिये जो उपयोगी और सुखकारक प्रकार हो उसीको काममें लाया जाय।

उदयपुर राज्यके दीवान श्रीयुत महता भूपालसिंह जी साहबको श्वासकास, यकृतोदरादि कई रोगोंसे बड़ा कष्ट था। अनेक प्रकारकी देशी विदेशी औषधियोंके सेवन करनेसे उन्हें कुछ भी लाभ न हुआ, अन्तमें बड़ी निराशाको लिये हुए वे मेरी चिकित्सामें आये। मैंने उनके लिये उचित स्वेदकर्मकी योजना की और कोई औषध विशेष खानेके लिये नहीं दी। युक्तिपूर्वक स्वेद देनेसे उन्हें बड़ा लाभ हुआ। बढ़ा हुआ श्वासका रोग एकदम मिट गया, जहां कई कई दिन तक नींद न आती थी, वहां सुखकी नींद लेने लगे, फेफड़ा और उदर हलका हो गया और थोड़े दिनोंकी चिकित्सासे उन्हें बिलकुल आरोग्यता प्राप्त हो गयी। दीवान साहबको देख कर श्रीमान् हिंदवाँ-सूर्य महाराणा साहब उदयपुरने भी इस चिकित्सा-पद्धतिकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की।

स्वेदके पश्चात् वमन कर्म है, स्नेहन और स्वेदनसे मल खंच खंच कर कुछ आमाशयमें आ जाते हैं और कुछ पक्वाशयमें। मल कहीं भी हों आमाशय और पक्वाशय पर उनका असर अवश्य पड़ता है, इसलिये वमनके द्वारा आमाशयकी शुद्धि करनी चाहिये। हृदय और फुफ्फस भी वमन कर्मके ही द्वारा शुद्ध होते हैं। वमन कर्मसे शरीर हलका होकर जठराग्नि प्रदीप्त हो जाता है।

वमन कठिन कर्म है, इसको खूब विचार कर करना चाहिये, चरक और सुश्रुतमें वमनकी परमोत्तम विधि कही है, सब व्यापत्तियां और उनके प्रतिकार विस्तारपूर्वक वर्णन किये हैं। चरकके कल्पस्थानमें मैनफल, जीमूत, कटुतुम्बी, धामार्गव, कुटज और कृतवेधन इन छः औषधियोंके अनेक उत्तम प्रयोग कहे हैं। बड़े दुःखसे कहना पड़ता है कि पञ्चकर्ममें वैद्य लोगोंका अभ्यास न रहनेसे इन प्रयोगोंके लिये हमको बिलकुल ही अज्ञानके अन्धेरेमें रहना पड़ गया है। हमारे कितने ही वैद्य भ्राता इन औषधियोंको ही भूल गये हैं, यदि आयुर्वेदोक्त पद्धति पर औषधालय खोल कर वैद्य लोग उनमें ये सब प्रयोग तैयार रखें तो उन्हें इस कर्ममें कितना सुभीता हो। सुश्रुतमें मैनफल, इन्द्रजौ, जीमूत, इक्ष्वाकु, धामार्गव, कृतवेधन, सर्षप, विडंग, पिप्पली, करंज, प्रपुन्नाट, कोविदार, कर्बुदार, अरिष्ट, अश्वगन्धा, विदल, बन्धुजीवक, श्वेता, शणपुष्पी, बिम्बी, वचा, मृगेर्वारुक, चित्रा, ये औषधियां वमनकारक कही हैं। इन सबसे या इनमेंसे पृथक् औषधियोंके अनेक प्रयोग बन सकते हैं। कई प्रयोग सुश्रुतके सूत्रस्थानके ४३ अध्यायमें बहुत अच्छे लिखे हैं। यहां तक कि जिनके सुंघानेमात्रसे* वमन हो।

आमाशयसे नीचे पक्वाशय, मलाशय और वस्तिगत दोष विरेचनसे दूर होते हैं। विरेचन देनेसे निम्न शरीरके यावन्मात्र विकार शान्त हो जाते हैं और किसी प्रकारकी तकलीफ़ नहीं रहती। यूनानी हिकमतमें जुलाब देनेका ही बड़ा तरीक़ा है। पहले मुंजिज़ देते हैं और घी खिचड़ी खिलाते हैं; फिर तीन चार जुलाब देते हैं; परन्तु वे स्वेदन और वमन नहीं कराते। स्निग्धता खिचड़ीमें घी खानेसे कुछ अवश्य हो जाती है और मुंजिज़से मवाद कुछ फूलता भी है; परन्तु जो उपयोगिता आयुर्वेदोक्त स्नेहन और स्वेदनकी है वह कदापि मुंजिज़से हासिल नहीं होती। यूनानी हिकमत भी मैंने पढ़ी है और उस पद्धतिसे भी अनेक रोगियोंका इलाज किया है और करता हूं। सहस्रों मनुष्योंको यूनानी ढङ्ग पर मुसहिल दिये हैं; परन्तु जो करामात आयुर्वेदिक पद्धति पर स्नेहन, स्वेदन और

*कृतवेधनफलपिप्पलीनां वमनद्रव्यकषायपरिपीतानां बहुशश्चूर्णमुत्पलादिषु दत्तमाघ्रातं वामयति। सु० सूत्रस्थान अ० ४३।

वमनके पश्चात् विरेचनकर्मकी देखी, वह कदापि उस ढङ्गमें नहीं पायी गयी। शार्ङ्गधरमें लिखा है कि:—

स्निग्धस्विन्नस्य वान्तस्य दद्यात्सम्यग्विरेचनम्।
आवान्तस्यत्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत् कफः॥
मदाग्निं गौरवं कुर्य्यात् जनयेद्वा प्रवाहिकाम्।

ये बातें यूनानी ढंगके जुलाबोंमें प्रायः देखनेमें आती हैं कि रोगीको पीछेसे मन्दाग्नि हो जाता है; जिसे लोग बीमारकी बद्-परहेज़ीके नामसे मौसूम करते हैं।

चरकके कल्पस्थानमें श्यामा, त्रिवृत, चतुरंगुल, तिल्वक, सुधा, सप्तला, शंखिनी, दन्ती, द्रवन्ती, इन औषधियोंसे बननेवाले अनेक बहुत अच्छे अच्छे विरेचन प्रयोग कहे हैं, वैद्य सज्जनोंको चाहिये कि उनको बना बना कर उनसे अनुभव प्राप्त करें; और इन गुप्त वा लुप्तप्राय आर्ष प्रयोगोंका पुनरुद्धार करें। सुश्रुत सूत्र-स्थानके ४४ वें अध्यायमें बहुत बहुत अच्छे विरेचन प्रयोग कहे हैं उनको भी काममें लाकर तजर्बा करना चाहिये।

विरेचनके पश्चात् वस्तिकर्म है। वस्ति दो प्रकारकी होती है, अनुवासन और निरूहण। ये बारी बारीसे दीजाती हैं और प्रायः दोनोंका प्रयोग साथ साथ ही हुआ करता है; परन्तु फिर भी रोग विशेषमें दोनों भिन्न भिन्न भी दीजाती हैं। स्नेहन, स्वेदन, वमन और विरेचनसे जो कमी धातुओंमें हो जाती है, वह वस्ति-कर्म द्वारा पूरी की जाती है, जो विकार शेष रहजाते हैं वे सब वस्तिकर्म द्वारा अवश्य दूर हो जाते हैं। यही नहीं वस्ति और भी बहुत गुण करती है। जैसा कि सुश्रुतमें लिखा है:—

तत्र स्नेहादीनां कर्म्मणां वस्तिकर्मप्रधानतममाहुराचार्याः कस्मादनेककर्मकरत्वाद्वस्तेरिहवस्तिर्नानाविधद्रव्यसंयोगाद्दोषाणां सं-शोधन संशमन संग्राहणानि करोति, क्षीण शुक्रं वाजी करोति, कृशं बृंहयति, स्थूलं कर्षयति, चक्षुः प्रीणयति, वलीपलितमुपहन्ति, वयः स्थापयति, शरीरोपचयं वर्णबलमारोग्यमायुषः परिवृद्धिं च करोति वस्तिः सम्यगुपासितः। अर्थात् सब स्नेहादि कर्मोंमें आचार्य्योंने वस्तिकर्मको प्रधान कहा है; क्योंकि एक वस्ति अनेक

कार्य्य सिद्ध कर सकती है। यह वस्ति नाना प्रकारके द्रव्योंके संयोगसे दोषोंका शोधन, शमन और संग्राहण सभी कर सकती है। क्षीणवीर्य वालोंको वाजीकरण है, दुबलेको मोटा ताजा बनाती है और स्थूलको पतला हलका करती है, नेत्रोंको तृप्त करती है ; और शरीरमें बुढ़ापेकी झुर्रियां और बालोंके सुफ़ेद होनेको दूर करती है ; आयुको स्थिर करती है, यहांतक कि वस्तिका ठीक उपयोग होना शरीरकी वृद्धि, बल, वर्ण, आरोग्य और आयुकी वृद्धि करता है। ये वस्तियां अनेक हैं । यथाः—उत्क्लेशन, दोषहर, शमन, लेखन, बृंहण, यापन, युक्तरथ, सिद्धादि, इनमें आवश्यकतानुसार समय समयपर सबका प्रयोग हो सकता है। उत्तरवस्तिसे योनि, गर्भाशय और शिश्नेन्द्रियके दोष दूर होते हैं। ये वस्तियां वर्तमान कालमें अङ्गरेज़ी ढंगकी बनी वस्तियोंसे दी जासकती हैं। डाक्टरोंमें भी वस्तिकर्मका प्रचार कुछ हो चला है; परन्तु अपने ढंगपर। यदि आयुर्वैदिक पद्धति पर वे भी इस कर्मको करें तो बड़ा लाभ हो।

वस्तिकर्मके पश्चात् नस्य विधि है। उर्द्ध्वजत्रुगत विकारोंको दूर करनेमें नस्यकर्म पूर्ण समर्थ है। नासिका शिरका द्वार है उसके द्वारा पहुंच कर औषध शिरोगत सर्व रोगोंका नाश कर देती है । जैसा कि चरक में लिखा है—"द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्व्याप्य हन्ति तान्" ।

नस्य के तीन कर्म हैं, रेचन, तर्पण, शमन । विकृत दोषोंको निकालनेके लिये रेचन नस्यका प्रयोग होता है, मस्तकके खाली हो जानेसे उत्पन्न हुई व्याधियोंको तर्पण दूर करता है; रक्तपित्तादि अनेक रोग शमन नस्यसे दूर होते हैं एवं नस्य कर्म सम्पूर्ण शिरो रोगोंसे उत्तमाङ्गको निर्मल कर देता है।

इस प्रकार पञ्चकर्मसे सम्पूर्ण शरीरकी शुद्धि होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है और रोगी बिलकुल दुरुस्त और सुन्दर स्वस्थ शरीर लेकर घरसे निकलता है, मानो कायाकल्प हुआ हो । इस छोटे निबन्धमें उन सब उपदेशोंका ज़िकर नहीं हो सकता, जो इस महाकर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। वे सारे उपदेश चरक, सुश्रुत और वाग्भटादि ग्रन्थोंमें यथास्थान लिखे हुए हैं। अर्थात् इनमें कौन कौन कर्म किस किस को करना, किसको नहीं करना, किस प्रकार

करना, देश, काल, औषध, मात्रा, व्यापत्तियोंका सुधार, कर्मके गुण आदि यावन्मात्र विषय इन ग्रन्थोंमें सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन किये गये हैं, वहांसे जानना चाहिये। इस छोटे लेखमें सिर्फ आप विद्वानोंका आकर्षण इस चिकित्सापद्धतिकी ओर करना मेरा अभीष्ट है। आप सब सज्जन बड़े बड़े विद्वान् हैं। आशा है आपमें-से जिन्होंने इस कर्मका अभ्यास न किया हो वे अवश्य करेंगे।

पञ्चकर्म विषयक अपना अनुभव मैंने पृथक लिख लिया है। समय आनेपर वह पृथक् छपेगा, उसमें इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले सब उपदेश रहेंगे।

पारदसंस्कार और चन्द्रोदय।

"नागो बङ्गो मलो वन्हिश्चाञ्चल्यं विषंगिरिः। असह्याग्नि-र्महा दोषा निसर्गात् पारदे स्थिताः। व्रणं कुष्ठं तथा जाड्यं दाहं वीर्यस्य नाशनम्। मरणं जडतां स्फोटं कुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम्।" इत्यादि दोष पारदमें विद्यमान रहते हैं। इस पारदकी शुद्धि किये बिना पारद किसी औषधिके काममें नहीं आता। जो वैद्य बिना संस्कार किये पारदकी भस्म करते हैं अथवा औषधिमें डालते हैं उनको शास्त्रकार "सदोषो भस्मितो येन योजितो योग कर्मणि। सभिषक् पतते नरकं यावच्चन्द्र दिवा करौ" इत्यादि वचनोंसे बहुत ही पापी बतला रहे हैं। इस वास्ते पारदके संस्कार अवश्य करने चाहिये। पारदके १८ संस्कार कहे हैं; स्वेदन-से लेकर बेधन तक। उनसे प्रथम कहे हुए (स्वेदनादि मर्दन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन, सन्दीपन) आठ संस्कार करनेसे पारद परम विशुद्ध हो जाता है। उसको किसी भी कार्यमें ला सकते हैं; और गगन (अभ्रक) भक्षणसे लेकर बेधन विधि सुवर्णादि शुद्धि तक १० संस्कारोंको द्रव्योपयोगी समझकर वैद्य छोड़ देते हैं। जैसा "इत्यष्टौसूत संस्काराः समा द्रव्ये रसायन। शेषा द्रव्योपगित्वान्नते वैद्योपयोगिकाः॥

पारदके आठ संस्कार।

शुद्ध आरनाल वगैरह जितनी खट्टी कांजी हैं, उनमेंसे किसी घटमें भर कर दोलायन्त्र विधिसे (चार परतके कपड़ेमें पारदको बांध कर कांजीके बीचमें लपटा देनेसे) दो पहर तक मन्दाग्निसे स्वेदन करे। इतना तेज भी अग्नि नहीं करे, जिससे कांजी उफन कर बाहर आ जाय और ऐसा मन्दाग्नि भी नहीं रहे जिससे पारद-में ऊष्मा भी नहीं पहुँचे। इस प्रकार स्वेदन संस्कार करनेसे पारद-के अवयवोंमें तदात्मापन्नदोष शिथिल सम्बन्ध हो जाते हैं। अर्थात् पारदके साथ नागादि दोषोंका जो दृढ़ तर सम्बन्ध था वह स्वेदन संस्कारके बलसे इतना शिथिल हो जाता है, जिसका दूरीकरण अल्पप्रयाससे हो जाता है। इसके बाद कपड़ेकी पोटलीसे पारदको निकाल कर खरलमें डाल कर राई, लवण, गृहधूम (जहां पर रसोई होती है मकानको छतमें जमा रहता है) गुड़, दही, लाल ईंटका चूर्ण इन सातों वस्तुओंको पारदसे सोलवां सोलवां हिस्सा लेकर सबको कूट छान कर पारदमें मिलाकर तीन दिन मर्दन करे। अर्थात् दिन भर मर्दन करे रात्रिको ढाक कर धर दे; अहो रात्रि मर्दन करनेको आवश्यकता नहीं है। मर्दन संस्कारके करनेसे सवनागादि मल पारदके सम्बन्धको छोड़ कर स्वसत्तामें स्थित हो जाते हैं। इसमें युक्ति—रोगी चिकित्सामें भी जिस रोगीके पञ्चकर्म (वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, नस्य) करने हैं उनसे प्रथम "स्नेहस्वेदो पपादनैः पञ्चकर्मणि कुर्वीत" इस चरक वचनसे स्नेह मर्दन और स्वेदन करने पड़ते हैं। क्योंकि स्नेह-मर्दन पूर्वक स्वेदन-से रोमकूपखुल जाते हैं। उनके द्वारा स्नेहका गुण प्रविष्ट होकर वातादि दोषको दूर कर देता है और उनही रोम कूपके द्वारा सर्व प्रस्वेद साथ निस्सरणीय दोष बाहर निकल जाता है। और अन्तर दोष कोष्ठसे सम्बन्ध छोड़कर स्वसत्तामें स्थित हो जाता है। दृष्टान्त-में केवल इतना तारतम्य है कि पञ्चकर्मवाले रोगीका प्रथम मर्दन (स्नेहमर्दन) पीछे स्वेदन करते हैं और पारदमें तो प्रथम स्वेदन पीछे मर्दन होता है। इस तारतम्यका भी यह तात्पर्य है कि रोगी मर्दन-की सामग्री स्नेहमात्र द्रव्य है। उसके साथ पीछे किया हुआ स्वेदन भी मिल नहीं सकता। और पारदकी तो मर्दन सामग्री गृहधूमादि

ऐसे द्रव्य हैं जिनमें स्वेद मिल सकता है। तब पारदसे वियुक्त नहीं हो सकेगा; और हमारा प्रयोजन यह भी है कि पारदका स्वेदन तो नागादि मलोंके शिथिल करनेको किया जाता है, रोगीका तो स्वेदसे दोष भी निकलता है और कोष्ठ सम्बद्ध मलभी, तीसरी बात यह है कि मनुष्य का शरीर तो घनीभावापन्न होनेसे विनास्नेह मर्दन किये स्वेदन किया जायगा तो उतना दोष कर्म नहीं निकलेगा। किन्तु पारद तो घन पदार्थ है नहीं किन्तु द्रव पदार्थ है; उसका प्रथम स्वेदन करनेसे भी निस्सरणीय दोषकी निवृत्ति हो सकती है ॥२॥ तृतीय मूर्छन संस्कारका जब अवसर प्राप्त होय तब गृहधूमादि सप्त पदार्थोंमें मिले हुए पारदको यातो डमरूयंत्रसे पारदको निकाल कर मूर्छन द्रव्यों को भी डाल दे। उत्थापन संस्कार करनेके समय सर्व दोष एकही बारमें निकल जायगा। यद्यपि "परसारण तो वापि क्षालनाह वाऽऽरनालतः" इस प्रमाणसे कपड़ेमें छानकर अथवा कांजीसे धोकर भी पारद निकालना प्रसिद्ध है। परन्तु इन दोनों उपायोंसे पारद निकालनेमें नुकसान पड़ता है। जो कपड़ेमें छानकर निकालते हैं तो संपूर्ण नहीं निकलता कल्कमें रह जाता है। यदि आरनाल कांजीसे धोकर निकालते हैं तो पारदके परमाणु जलके साथ वह जाते हैं। पारद इतना सूक्ष्म है कि वीस परत कपड़ेमें भी धोइये तो भी पानीके साथ छनकर निकल जाता है। इसीलिये डमरूयंत्रसे ही निकालना श्रेष्ठ है। इसी वास्ते :—

"ऊर्द्ध्वपातनयन्त्रेण गृह्णीयाच्च पुनः पुनः। परसारणतो वापि क्षालनाद्वारनालतः" इस प्रमाणसे डमरू यन्त्रको अभ्यहित (श्रेष्ठ) समझ कर ही प्रथम ग्रहण किया है। उस पारदमें घृतकुमारीका रस त्रिफलाका क्वाथ और चीतेकी जड़का क्वाथ इन तीनों क्वाथोंको सात भावना देनेसे पारद मूर्च्छित (अदृश्य) हो जायगा। पारदकी दाहशक्तिको त्रिफला (हरड़ बहेड़ा आमला) दूर करता है, चित्रक विषको दूर करता है और घृतकुमारी पारदके मलको दूर करती है। यह बात लोकमें भी प्रसिद्ध है कि जो मनुष्य चांदी बनानेके शौकीन होते हैं वे प्रथम घृतकुमारीको २१ भावना देकर

हिंगुलोत्थ पारदकी कालिमाको दूर कर देते हैं. पीछे रामपत्री और रुद्रवन्तीके योगसे पारदको बद्ध करते हैं अथवा जसदके योगसे पारदके पानीको सुखा देते हैं। यदि प्रथम घृतकुमारीकी २१ भावना नहीं दें तो पारदकी स्याही नहीं जा सकती। इन तीनों संस्कारसे जब पारदका सर्व मल दूर हो गया तब पारद निर्मली-भावापन्न हो कर अपनी सत्तामें स्थित रहता है। दृष्टांतमें भी जिस रोगीको चतुर्थ संस्कार वमन कराना है उसको भी मुंजिश दिया करते हैं; जिससे कोष्ठका मल फूल जाय और कोष्ठ निर्मल हो जाय। इसीको मूर्च्छन संस्कारका स्थानापन्न समझना चाहिये। अथवा मदन फल, जैपालादि भी उदरमें पहुंच कर एक दो घण्टेमें सब मलको बटोर कर एकत्रित कर देते हैं और कोष्ठ निर्मल हो जाता है उसी क्रियाको मूर्च्छन संस्कारके स्थानमें रखो। यह दूसरी बात है कि वही जैपालमदनादि द्रव्य अपनी दूसरी क्रियासे उत्थापन भी करते हैं। मूर्च्छनके बाद उत्थापन संस्कार इसको कहना चाहिये कि सम्पूर्ण कल्क सहित पारदको डमरूयन्त्र द्वारा उत्थापन (उर्द्ध्वपातन) कर लेना। ऐसा करनेसे सर्व दोषमय कल्क तो नीचेकी हांडीमें रह जायगा और पारद दोषोंसे वियुक्त हो कर ऊपरकी हांडीमें लग जायगा। कोई कोई आचार्य उत्थापन-को "कल्कसे उठा लेना" ऐसा अर्थ समझ कर कल्कमें बाकी बचे पारदको "डमरूयन्त्रसे उड़ा लेना" इन दो क्रियाओंको उत्थापन संस्कार कहते हैं। जैसा—"तत उत्थापयेत्सूतमातपे निम्बुकार्दितम्। उत्थापनावशिष्टं तु चूर्णं पातनयन्त्रके। धृत्वाऽग्नावूर्द्ध्वभाण्डान्तं संग्रहेत् पारदं भिषक्" इस मतमें उठानेसे बाकी बचे चूर्णको डमरूयन्त्रमें चढ़ाना ही होगा तब एक बार ही सर्वको उड़ा लेनेसे क्या दोष है? प्रत्युत जितनी बार पारदमें अग्नि संस्कार होगा उतना ही अच्छा होगा। एतन्मूलक ही तो "यावद्दिनानि देवेशि! वह्निस्थो धार्यतेरसः। तावद्वर्ष सहस्राणि शिवलोके महीयते" यह फल श्रुति है। इसलिये हमारे विचारसे तो निम्बुके रसमें घोटकर सूर्यातपमें सुखा कर उर्द्ध्वपातन यन्त्रमें उड़ा लेना चाहिये, इसीको उत्थापन संस्कार कहते हैं। युक्तायुक्त विद्वान् लोग विचार

लें ४ । पञ्चम संस्कार पातन (गिराना) दो प्रकार है, अधः पातन और तिर्यक् पातन । जो आचार्य ऊर्द्ध्वपातनकी भी पातनमें गणना करते हैं उत्थापनमें नहीं करते, उनके मतमें उत्थापनका उठा लेना मात्र ही अर्थ समझना चाहिये । और पातनके तीन भेद समझने चाहिये । तूतियासे निकाला हुआ तांबा एक भाग, पारद तीन भाग दोनोंको नींबूके रसमें खरल करे, जब गोला बंध जाय तब डमरूयन्त्रमें रखकर दो पहरका अग्नि लगावे । ऊपरकी हांडी पर जलमें भीजा हुआ आठ परत कपड़ा रख दिया जाय, जब वह कपड़ा बहुत गरम हो जाय तब दूसरा बदल देना, इसको ऊर्द्ध्वपातन (उत्थापनका भेद) संस्कार कहते हैं ।

तूतियासे ताम्र निकालनेकी विधि ।

एक सेर तूतियाको कूटकर चलनीमें छानले, लोहकी कढ़ाईको खूब मांजकर उसमें तूतियाका चूर्ण रखदे, उस चूर्णके ऊपर एक कपड़ा बिछादे, उस कपड़े पर एक सेर त्रिफला बिनाही कूटा हुआ बिछादे, उस कढ़ाईको बड़ी कढ़ाईमें रखकर पांच सेर त्रिफला और डालकर ऊपर तक पानी भरकर खुले मैदानमें रखदे, जिससे चन्द्रमाकी चांदनी भी पड़े और सूर्यकी धूप भी लगे । इस प्रकार १५ दिन तक रखनेसे निश्चय करले कि तूतियासे तांबा निकल आया । तब धीरे धीरे त्रिफलाको निकाल डालना और बड़ी कढ़ाईसे छोटी कढ़ाईको निकाल कर धीरेसे कपड़ेको उठा लेना, छोटी कढ़ाईमें तांबा जमा हुआ मिलेगा । एक सेर तूतियासे तीन छटांक तांबा निकलता है । और जो त्रिफलाका पानी बचा है उसको कढ़ाईमें डालकर आधा जला देना वह उत्तम स्याही लिखनेको बनगयी । उसको बोतलमें भरकर रखना । उसको और भी अच्छी करनी होय तो थोड़ा कसीस और विजयसार, कदलीस्तम्भ (केलाके खम्भेका पानी) इन तीनों चीजोंको घोटकर त्रिफलाके पानीमें पकाते बार डालदे । यह ऊर्द्ध्वपातन और उत्थापन दोनों संस्कार वमनके स्थानापन्न समझने चाहिये । और वक्ष्यमाण अधःपातन संस्कार रेचनके स्थानमें है । दृष्टांतमें इतना ही वैषम्य है

कि वमन विरेचनसे रोगीके दोषोंका ऊर्द्ध्वाधःपातन होता है। पारद संस्कारमें पारदका ही ऊर्द्ध्वाधः पातन होता है।

अधःपातन।

त्रिफला, सहजनकी छाल, चित्रक (किसीके मतसे चिरचिटा), सफेद सरसों, यह सब पारदके समान भाग लेकर इन्हींके साथमें घोट कर पिट्ठी करके ऊपरकी हांडीमें लेप कर देना और नीचेकी हांडीमें पानी भर कर डमरूयन्त्र जैसा बनाकर चिकनी मिट्टी, लोहेका चून, बालूरेता तीनों चीजकी मुद्रा करके खूब सूख जाने पर नीचेकी हांडीको जमीनमें गाड़ दे (जिस प्रकार भिलावांका तेल निकालनेको चरकमें पातालयन्त्र लिखा है) ऊपरसे वनोपल (बीनवां कंडा) का अग्नि लगा दे। सर्व पारद दोषोंको ऊपरकी हांडीमें ही छोड़ कर नीचे जलवाली हांडीमें आ जायगा। इसको अधःपातन संस्कार कहते हैं।

तिर्यक्पातन।

नींबूका रस और इमलीके फल (कटारे) का गुद्दा इन दोनोंके साथ पारदकी पिट्ठी करके एक हांडीमें भर देना, दूसरी हांडीको उस हांडीके साथ मिलाकर डमरुयन्त्र जैसा बनाकर मुद्रा कर देना और मुद्रा करनेके बाद दोनों हांडियोंके मुखको एक सुतलीसे ऐसी मजबूत बांधे कि दोनों हांडियोंका जोड़ खुले नहीं (जैसा मोमका तेल, गन्धाविरोजेका तेल निकालनेको बांधते हैं) फिर उस सुतलीके ऊपर मिट्टीका गहरा लेप कर देना ताकि अग्निसे सुतली जले नहीं। इस प्रकार यन्त्र तैयार करके उस यन्त्रको तिरछा करके जिसमें पारद है उस हांडीको चूल्हे पर बैठा देना और हांडीके मुख पर ऐसी होशियारीसे मिट्टी लगाना कि अग्निकी लपट दूसरी हांडी तक न पहुंचे। बस एक पहर अग्नि लगानेसे सर्व पारद दूसरी हांडीमें आ जायगा। इस प्रकार पारदको तिरछा उड़ाया है इसलिये इसको तिर्यक्पातन कहते हैं। इसके स्थानमें रोगीको वस्तिकर्म किया जाता है।

बोधन।

स्वेदन, मर्दन मूर्च्छन, उत्थापन, ऊर्द्ध्वपातन, अधःपातन, तिर्यकपातनसे, जब पारद बहुत कदर्थित (जिच्च) किया गया तो उसको होशमें लानेके लिये बोधन संस्कार किया जाता है। यदि बोधन संस्कार नहीं करें तो पूर्व क्रियाओंसे पारद नपुंसकत्व (रोग निवृत्ति लक्षण स्वकार्यमें असमर्थभाव) को प्राप्त होगा और औषधोपयोगी नहीं हो सकता।

पारदको लवणके पानीमें अथवा स्त्रीके मासिकधर्मके आर्तवमें डुबा कर एक शोशीमें बन्द करके जमीनमें गाड़देना, कोई वैद्य गड्ढेमें घोड़की लीद भर कर गाड़ते हैं, जिससे ऊष्मा अधिक लगे, १५ दिनके वाद निकालना, इसको बोधन संस्कार कहते हैं। पारदको रुद्धकरके रखा जाता है, इसलिये इसको रोधन संस्कार भी कहते हैं। जैसे रोगी भी स्नेहन स्वेदन वमन विरेचन वस्ति कर्मसे नपुंसक-प्राय (अपने कार्यमें असमर्थ) हो जाता है, तब उसको निर्वातस्थानमें बन्द करके रखते हैं। उससे उसका श्रम दूर हो जाता है और स्वास्थ्य लाभ होता है।६। छटे संस्कारके बाद सरफोंका, आमली, वन्ध्याक-कोड़ा, भांगरा, नागरमोथा, धतूरा, इन नियमित वस्तुओंके रसमें पारदको ४ पहर स्वेदन करनेसे नियमन संस्कार कहाता है। जैसे रोगीको पञ्चकर्मके बाद आचारिक विधि (शीतजल नहीं सेवन करना, व्यवाय, व्यायाम त्यागदेना, अपथ्य भोजनसे बचना इत्यादि नियम) पालन कराते हैं ॥७॥ कसीस पांचों लवण (सैंधव, सामर, खारी, काला, विड) राई, काली मिरच, सहजनके बीज, सुहागा चौकिया शुद्ध (तीन दिन तक भैंसके गोबरमें दबानेसे सुहागा शुद्ध होता है) इन सबको पीसकर कपड़ेमें छान कर कांजीमें डालकर तीन दिन तक दोलायन्त्रमें स्वेदन करनेसे पारदका दीपन संस्कार होता है। अर्थात् जिस औषधिमें डाला जाय वही औषधि उत्तम बनती है। रोगीको भी आचारिक विधि पालनके बाद अम्लक्षार घटित औषधप्रयोगसे स्वास्थ्यलाभ दीप्ति बढ़ती है ॥८॥ इस प्रकार आठ संस्कार करनेसे पारद परम विशुद्ध होता है। यदि कोई वैद्य

इन आठ संस्कारमें बहुत परिश्रम और द्रव्यव्यय समझे तो महर्षियों-ने हिङ्गुलात्थ पारदको लेना लिखा है, हिंगुलसे निकाला हुआ पारद उक्त आठ संस्कारोंसे संस्कृत पारदके समान है। परन्तु हिंगुलोत्थपारदको चार पहर तक गोमूत्र, सैन्धव लवण, नींबूके रसके साथ स्वेदन करना चाहिये। १ सेर पारदको चार परत कपड़ेमें बांध कर ५ गोमूत्र १ सेर सैन्धव ।। नींबूके रसमें दोलायन्त्रसे स्वेदन करना।

हिङ्गुलसे पारद निकालनेकी विधि।

हिंगुलसे पारा निकालनेकी विधि पांच प्रकारसे श्रीवेङ्कटेश्वर समाचारमें छपा चुका हूँ; परन्तु इससे और सुगमविधि नहीं है। ॥ हिंगुल (सिंगरफ) को पीस कर कपड़ेमें छान कर कपड़े पर पतला पतला बिछादे और धीरे धीरे लपेटता जाय लड्डूके माफिक गोल बनाकर ऊपरसे और भी कपड़ा लपेटता जाय। जितना हिंगुल हो उतना ही तोलमें कपड़ा रहे। अर्थात् ॥ हिंगुल हो तो ॥ सेरही कपड़ा रहे, कपड़ा पुरानी धोती डुपट्टा किसीके चीथरा होय, परन्तु साबुनमें धोकर सफेद कर लेने चाहिये। मलिन कपड़ेसे अग्नि बुझ जाता है; पूरा पारद नहीं निकलता; कपड़ेको भी बहुत जोरसे न लपेटे नहीं तो अग्नि पहुचेगा ही नहीं। पृथ्वीमें एक लम्बा कागज बिछाकर उस कागज के बीचमें नम्बरी ईंटा दो बिछाकर उसके ऊपर तवा रख दे उस तवे पर सिंगरफके कपड़े की पोटली को रख कर अग्निके सुलगे कोयला उस पोटलीके चारों तरफ रख कर पंखासे हवा कर दे। जब जाने कि कपड़ेमें अग्नि लग गया बुतेगा नहीं तब उसके ऊपर मिट्टीकी बड़ी नांद ढाक दे, परन्तु नांदके किनारेके इटोरा लगा कर एक अंगुल नादको ऊपर उठा देना चाहिये, जिससे वायु का सञ्चाररुद्ध नहीं होय। सर्वथा वायु नहीं पहुँचनेसे अग्निबुझ जायगा। नांद नहीं ढाकनेसे पारा उड जायगा। बस इस प्रकार निर्वात स्थानमें रख कर छोड़दे, प्रातःकाल स्वाङ्गशीतल होनेसे कपड़ेकी भस्म पर मेतियों की सी पंक्ति मिलेगी। तवा परभी पारदकी सफेदी छायी हुई मिलेगी। नांदमी संपूर्ण पारद की सफेदीसे व्याप्त

मिलेगी। सबको एक कपड़ेके टुकड़ेसे झाड़ लेना; राखको झाड़कर किसी कागज पर फटक लेना; इस विधिसे ४० तोला हिंगुलसे ३६ तोला पारद निकलता है। कुछ तकलीफ नहीं कुछ खर्चाभी नहीं; आठ सँस्कार करनेसे जो गुण होता है सो हिंगुलोत्थ पारदसे होता है। इस पारद का केवल गोमूत्र, सैन्धव, नीबूके रसके साथ ४ पहर स्वेदन करना पड़ता है। इस विषयमें जो कुछ खण्डन मण्डन था सो सब वेङ्कटेश्वर समाचारमें प्रसिद्ध कर चुका हूँ जैसाः—

श्रीसूतराजः खलुहिंगुलोत्थो निर्दोष एवेति वदन्ति विज्ञः।
संशेरते ये मुनि भाषितेऽर्थे कथं कुतर्की न्ऽतिशेरते ते ॥१॥
वहुव्ययं यः समुपेक्षमाणो निरीक्षमाणोऽथ गुणं सुवैद्यः।
परिश्रमं चाल्प मपेक्षमाणो गृह्णातु सर्वत्र स हैंगुलं तम् ॥२॥
स्वेदनाद्यष्टसंस्कार नऽन्तरेणापि पारदः।
हिंगुलोत्थो विशुद्धोऽयं प्रयोगे नैव दुष्यति ॥३॥
यद्वा जानन् सजानीयाद् गुणं दोषं च कश्चन।
विमानं कथं नाम श्रद्दध्याच्छ्यामसुन्दरः ॥४॥

इस विषयमें और जो कुछ वक्तव्यांश है सो "रसायनसार" लेखमाला पुस्तका कार छप रही है उसमें प्रसिद्ध कर देंगे।

ये आठ संस्कार दवा बनानेवाले तथा स्वर्णादि सिद्धि रसायन-प्रयोग करनेवाले सभी वैद्योंको करने होते हैं। अग्रिम १० संस्कार गगन (अभ्रक) भक्षणसे लेकर वेध विधि तक कहे हैं। इधर दृष्टान्तमें भी स्नेह स्वेद पूर्वक पञ्चकर्म करके जब शरीरको निर्मल बना लिया, तब गगन (अभ्रक भस्म) भक्षणसे ही शरीर सिद्धि की जाती है। स्वर्णादि सिद्धि हमको अनुभूत नहीं है, इसलिये १० संस्कार हमने नहीं लिखे। जिसको दिदृक्षा होगी वह शास्त्रोंमें देख कर सन्तोष कर सकता है। मक्षिका स्थाने मक्षिका लिखनेसे क्या फायदा है?

पारद भस्म विधि।

पारद भस्मके विषयमें हमने बहुत प्रयास किया है, यथाशक्ति शरीर तथा द्रव्यसे भी अनेक महात्माओंकी सेवा की है। स्वयं भी शास्त्रावलोकनसे, युक्तियोंसे अनुभव किया है; परन्तु जैसा पारदभस्ममें गुण लिखा है (शरीरसिद्धि सुवर्णादिसिद्धि) वह गुण मेरे देखनेमें नहीं आया; परन्तु प्रयोग सच्चा है। कभी शिवजी महाराजकी कृपा होगी तो प्रसिद्ध करूंगा। तो भी वैद्यपरिषत्‌की आज्ञानुसार जितना मैं जानता हूँ उतना अवश्य लिखता हूँ:—

एक मिट्टीके शराव (सकोरा) में १ तोला पारद रख कर उसके ऊपर ४ तोला गन्धकका तेजाब बाजारसे खरीद कर डाल देना उस मिट्टीके शरावको ऽ। कोयलोंके अग्नि पर बैठा देना १ मिनिटके बाद धूम उठने लग जायगा। आप धूमसे बच कर तमाशा देखता रहे। जब निर्धूम हो जाय तब उस सकोरेको अग्निसे उतार कर नीचे रख दें। बीचमें पारद बताशेकी माफिक फूला हुआ सफेद भस्मके आकार मिलेगा। जिसको देख कर वैद्य लोग सैकड़ों रुपये लगा देते हैं और समझ लेते हैं कि हमको पारद भस्म आती है। परन्तु बाबू मेरे! यह पारद भस्म नहीं है, पारदभस्माभास है। पारद भस्मकी पहचान यह है:—

अतेजाश्चाऽगुरुः शुभ्रो लोहहाऽचञ्चलो रसः।
यदा नावर्त्तते वह्नौ नोद्र्ध्वंगच्छेत् तदा मृतः॥

जिसमें चमक रहे नहीं, हलका हो, सफेद हो धातुओंका मारक (धातुओंकी भस्म करनेवाला वेधी बने तो ताम्रादिका सुवर्णादि करनेवाला) चञ्चलता रहित (द्रुतावस्थापन्न न रहे), अग्निमें तपानेसे रङ्ग नहीं बदले, अग्निसे उड़े भी नहीं, तब जानो कि भस्म हुआ। यह गुण उक्त भस्ममें नहीं है। जब पैसा पर मलनेसे पैसा भी सफेद पड़ जाता है तब भस्म कैसे समझा जाय? मैंने खाकर भी थोड़ा सा देखा था, दोपहर तक मेरी तबियत खराब रही फिर दो रत्ती चन्द्रोदय घृत मधुके साथ खानी पड़ी तब प्रकृति शान्त हुई।

पड़ेगा। फिर समय हाथसे निकल जानेसे इसतुच्छधन और नश्वर अधम शरीरसे क्या लाभ होगा ? हम अकेले क्या कर सकते हैं; यह महान् आलस्य एवं कादरता तथा निर्बलतासे भरा वाक्य है। याद रखिये जो निर्बल है वही पापी है, जो सबल है, वही धार्मिक है, स्वामी शंकराचार्य. महात्मा बुद्धदेव, महाप्रभु चैतन्य स्वामी, स्वामी रामानुजाचार्य्य आदि अकेलेही होते हुए जगत् क्षेत्रमें कितना कार्य्य कर गये। तब आपको सहस्रोंकी संख्यामें होते हुए कौन कार्य्य असाध्य है ? काम करने वालोंको सब सहायता करते हैं, निकम्मों-की नहीं। इससे आंख कान हाथ पैरोंके होते हुए अन्धे लूले न बनिये, ज्ञानके रहते हुए अज्ञानी न बनिये। कर्मवीर महात्मा गांधी की दृढ़ता का अनुकरण करिये। निस्संग कार्य्य करिये, कर्मके फलों को मत चाहिये सर्वान्तर्य्यामी भगवान् सहायता करेंगे।

इसी आयुर्वेदीय चिकित्सा द्वारा परम्परासे आरोग्य रहते चले आये हैं। इसी चिकित्सा वृत्तिके धनसे ऐहिक आमुष्मिक देव, पितृ, सांसारिक समस्त कार्य्य सुविधा पूर्वक होते चले आये हैं। यह विद्या हमारी बनायी नहीं है यह ईश्वरी विद्या है। ऋषियोंके शारीरिक मानसिक तप द्वारा प्राप्त हुई है। उन्होंने हमारे सुखके लिये अपना संपूर्ण जीवन बनाये रह कर आयुर्वेदके प्रकाश-के लिये बिताया है। उनका ऋण हमारे ऊपर है। यदि आयुर्वेदको उन्नत करनेकेलिये अपना तन मन धन अर्पण न करेंगे तो उस ऋणसे उद्धार कभी भी न होंगे। यह विदित है मानुषी ऋण चुका दिये बिना यह जनश्रुति चरितार्थ होती है "ऋण-हत्या न मुच्यते" फिर ऋषि, देव, पितरके ऋणको जगत्पिता पर-मात्माकी आज्ञानुसार मुक्त न करेंगे तो सहस्रों जन्म नाना यातनाएं भोगनेमें क्या सन्देह हो सकता है ? यह न समझिये हमारी आयु-र्वेदविद्या कोई साधारण विद्या है, यह हमारे राष्ट्रकी जीवनी है। यह हमारा तुम्हारा सर्वस्व है, यही हमारी तुम्हारी जातीयता एवं सङ्घशक्तिकी जननी शक्ति और उत्साह प्रदात्री है। हमारे तुम्हारे धन-धर्म-प्राणोंकी रक्षणकर्त्री है। पूर्वकालके समान सम्पूर्णाङ्ग न होने पर भी ७५ फीसदी भारतवासी आयुर्वेदीय औषधियों द्वारा ही आरोग्य पाते हैं। इतना होने पर भी व्याकरण, न्याय, सांख्य,

ज्योतिष आदि समस्त विद्याएं सरकार अपनी युनिवर्सिटियोंमें पढ़ाती है और परीक्षा लेकर प्रमाणपत्र प्रदान करती है; किन्तु वैद्यकशास्त्रकी न जानें क्यों पैटारी नहीं। आप महर्षि भरद्वाज, कश्यप, उपमन्यु, कात्यायन आदि महर्षियोंकी संतान इस भारतमें विद्यमान् हैं, यही नहीं उनकी संतान होनेका सगर्व गौरव रखते हैं। पर शोकसे कहना पड़ता है कि आज उनकी सन्तानोंमें जीवनी बहुत कम दिखाई पड़ रही है। यदि आप ऋषि सन्तान हैं, यदि आप सच्चे देश भक्त हैं, यदि आप अपने भाइयोंके सच्चे शुभ चिन्तक हैं, यदि सच्चे आयुर्वेदके प्रेमी हैं, यदि आपमें उन्हीं ऋषियोंका रक्त है, यदि आप शुद्धान्तःकरणसे देव ऋषि पितृ ऋणसे उद्धार होना चाहते हैं, तो मुक्त कण्ठसे आयुर्वेदविद्यापीठ की ओरसे विद्यालय स्थापन करने और करानेकी प्रतिज्ञा कीजिये। यही निस्स्वार्थ काम करके संसारको कुछ कर दिखलानेका समय है। जिससे संसारकी सभ्य एवं उन्नत जातियोंके समक्ष अपना मस्तक उन्नत कर सकें। आर्य्य सन्तानो, आपको कर्म्मवीर बननेकी आवश्यकता है। आलस्य स्वार्थादि दोषोंको त्यागकर संघशक्तिसे काम करना आरम्भ कीजिये। अपनी धीरता वीरता और कर्तव्यनिष्ठाकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो समस्त वैद्य संसारकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझिये। चार दिनके जलसेमें ही नहीं वरन् प्रतिक्षण अपने विद्याके प्रभाव-प्रकाशसे संसारको प्रकाशित कीजिये। अपनी वीरतासे देशी विदेशी जनोंको अपने पवित्र आयुर्वेदका प्रभाव दिखा दीजिये। अपनी कादरता ईर्ष्या एवं समस्त दोषोंको अग्निमें हवन कर उस धूमसे आकाश मण्डलको आच्छादित कर दीजिये। अपने आयुर्वेदके शुद्ध आकाश भेदी गम्भीर स्वरसे दशों दिशाओंको एक ओरसे दूसरे ओर तक हिलाते हुए अपने समालोचक एवं निन्दकोंके अन्धकारसे भरे हुए हृदयको दहलाकर अपना असली स्वरूप दिखा दीजिये। महोदय, यह आयुर्वेद महामण्डल आपका ही बनाया हुआ है, उसके उद्देश्यों-को पालन करना परम कर्त्तव्य है, यही हमारी प्रार्थना है।

आयुर्वेदमहामण्डलके लिये लाला राजकिशोरने त्रिवेणी प्रेस दारागञ्ज प्रयागमें छापकर प्रकाशित किया।